सन्तान-पालन की विषय सूची

क्रम संख्या	पृष्ठ संख्या

सन्तान-पालन

वीर्य दर्शन

मनुष्य-शरीर के सार-तत्व का नाम वीर्य है। वैद्यक शास्त्र ने जीवन का मूल तत्व इस वीर्य को ही माना है। यह वीर्य आहार का अन्तिम तत्व है। आयुर्वेद का मत है:—

> रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
>
> मेदस्यास्थितो मज्जा मज्जाया शुक्र सम्भवः॥
>
> सुश्रुताचार्य

अर्थात्—भोजन के पचने पर रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य पैदा होता है। इससे लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ घड़ी तक अपनी अवस्था में रहती है। बाद तीस दिन-रात और नौ घड़ी में रस से वीर्य बनता है। ऐसा भोज तथा

अन्य आचार्यों ने लिखा है। स्पष्ट रीति से यों समझना चाहिए कि मनुष्य जो कुछ आज भोजन करता है, उसका वीर्य बनने में पूरा एक महीना लगता है। इसी प्रकार और इतने ही समय में स्त्री शरीर में रज पैदा होता है। शरीर के बलाबल के अनुसार इस समय में न्यूनाधिकता भी हो जाती है।

इसी पुरुष वीर्य और स्त्री-रज के आधीन स्त्री-पुरुष की शारीरिक और मानसिक सारी शक्तियाँ रहती हैं। इसी के प्रभाव से ब्रह्मचारी पुरुषों और ब्रह्मचारिणी स्त्रियों का शरीर बल वीर्य से पूर्ण, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा पवित्र देखा जाता है। यदि यह न रहे, तो शरीर एक क्षण भी न टिके। शरीर-स्थिति का मूल-तत्व यही है। अब यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि वीर्य की उत्पत्ति शरीर में किस अवस्था से होती है? यों तो शरीर की उत्पत्ति ही वीर्य से होती है, अतः वीर्य-शून्य तो कभी शरीर रहता ही नहीं और न वीर्य-हीन शरीर जीवित रह सकता है, पर स्पष्ट रूप से १२—१३—वर्ष की अवस्था से शरीर में वीर्य बनने लगता है। इससे पहले शरीर में जो वीर्य बनता है, वह सबका सब शरीर की वृद्धि और उसके विकाश में खर्च हो जाया करता है और किशोरावस्था के आरम्भ में वह दिखलायी पड़ने लगता है। पचीस वर्ष की अवस्था तक पुरुष-शरीर की वृद्धि जारी रहती है। तत्पश्चात् उसमें पुष्टता आती है। इसी अवस्था में वीर्य परिपक्व भी होता है। जो मनुष्य इस अवस्था से पहले ही वीर्य-पात करना प्रारम्भ

कर देता है, उसका वीर्य कभी भी पुष्ट नहीं होता और साथ ही उसके शरीर की बाढ़ भी मारी जाती है। अतएव पचीस वर्ष की अवस्था तक वीर्य का संचय करना अत्यन्तावश्यक है। सुश्रुताचार्य ने लिखा है:—

ऊन षोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्तेपुमान गर्भं कुक्षिस्थ स विनश्यति॥

अर्थात्—सोलह वर्ष से कम उम्र की स्त्री और पचीस से कम अवस्था के पुरुष के रज वीर्य से जो गर्भाधान होता है वह नष्ट हो जाता है। अभिप्राय यह है कि उससे जो सन्तान पैदा होती है, वह सर्वगुण-सम्पन्न और दीर्घायु नहीं होती।

वीर्योत्पत्ति का परिमाण

वीर्य बहुत ही कम मात्रा में तैयार होता है। कुछ लोगों का कहना है कि ४० ग्रास आहार से १ बूँद रक्त और ४० बूँद रक्त से १ बूँद वीर्य तैयार होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि २ तोला वीर्य के लिए १ सेर रक्त और १ सेर रक्त के लिए १ मन आहार की आवश्यकता होती है।

अब यह बात मालूम हो गयी कि यदि निरोग मनुष्य सेरभर अन्न रोज खावे तो ४० दिन में वह ४० सेर अन्न खा सकेगा। अतएव उसकी ४० दिन की कमाई दो तोला वीर्य है। इस हिसाब से ३० दिन की कमाई में केवल डेढ़ तोला वीर्य ही हृष्ट पुष्ट मनुष्य को प्राप्त होता है। ऐसे मूल्यवान पदार्थ को शरीर से निकाल देना कितना अनर्थ है। इस पर लोग पूछ सकते हैं कि जब वह इतना कम तैयार होता है, तब रात दिन विषय करने वालों के शरीर में वह आता कहाँ से है? प्रश्न बहुत ही ठीक है! बात यह है मनुष्य के शरीर में वीर्य सदा कुछ न कुछ तैयार रहता है। हम पहले ही कह आये हैं कि वीर्य के बिना शरीर जीवित नहीं रह सकता। दूसरी बात यह है रात-दिन विषय करने वाले मनुष्य का वीर्य अच्छी तरह से पकने तो पाता नहीं, वह तो अपने असली रूप में आने से पहले बाहर निकल जाता है, अतः उनके वीर्य को तो वीर्य कहना ही अनुचित है।

यहाँ पर एक बात का और उल्लेख कर देना आवश्यक है। वह यह कि बहुत से लोग समझते होंगे, यदि वीर्य हमेशा बनता है; और वह आहार का अन्तिम सार है तो कुछ समय में बहुत अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता होगा। यदि उसे काम में न लाया जाय तो अन्ततः वह किस काम आवेगा। इसका साधारण उत्तर यही है कि आहार किये हुए पदार्थ से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से अस्थि (हड्डी) हड्डी से मज्जा और फिर उससे वीर्य बनता है। बाद वीर्य की भी पाचन क्रिया होती है। उसका 'ओज' बन जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि सब धातुओं में सर्वश्रेष्ठ वस्तु वीर्य है और वीर्य का श्रेष्ठ भाग ओज है। इसी ओज का दूसरा नाम बल भी है। इस ओज की ज्यों-ज्यों वृद्धि होती है, त्यों-त्यों शरीर की वृद्धि होती है और इसकी न्यूनता से शरीर का नाश होता है। उत्साह, साहस, धैर्य, लावण्य, संयम तेज, सौन्दर्य, प्रसन्नता, बुद्धि आदि इसी ओज की विभूतियाँ हैं। अधिक मात्रा में वीर्य का नाश करनेवालों में ये विभूतियाँ नहीं रहतीं। यही कारण है कि हमारे शास्त्रकारों ने सन्तानोत्पत्ति के लिये छोड़कर और किसी भी अवस्था में वीर्य नाश करने की आज्ञा नहीं दी है।

वीर्य का स्थान

वीर्य सारे शरीर में प्रसरित रहता है—इसके रहने का कोई विशेप स्थान नहीं है। जिस प्रकार दूध में मक्खन रहता है, उसी प्रकार शरीर में वीर्य। जिस प्रकार दूध को मथने से मक्खन बाहर आ जाता है, उसी प्रकार रति करने से सारी शारीरिक इन्द्रियों का मंथन होकर वीर्य अण्डकोप में जमा हो जाता है और 'उप-स्थेन्द्रिय' द्वारा बाहर निकलता है।

रजोदर्शन

इसका दूसरा नाम मासिक धर्म है। भारत की स्त्रियाँ साधारणतया १२—१३ वर्ष की अवस्था में ऋतुमति होती हैं। गर्म प्रान्तों में इससे कुछ पहले और ठण्डे प्रान्तों में इससे कुछ अधिक समय में स्त्रियाँ ऋतुमति होती हैं।

महीने में एक बार स्त्रियों के गुह्यस्थान से एक प्रकार का रक्त निकलता है, उसीको आर्त्तव या ऋतु कहते हैं। इस रक्त का निकलना ३ से ६ दिन तक जारी रहता है। यदि इसके बाद भी रज का निकलना बन्द न हो तो मासिक धर्म में दोष समझना चहिये। यह क्यों निकलता है, यह जानने के लिए पाठक-पाठिकाओं का उत्सुक होना स्वाभाविक है। बात यह है कि स्वाभाविक नियमा-

नुसार १२—१३ वर्ष की अवस्था में बालिकाओं के गर्भाशय के भीतर रक्त का संचार होना शुरू होता है। इन दिनों गर्भाशय का मुख कुछ-कुछ खुल जाता है और रक्त योनि-मार्ग से होकर बाहर निकलता है। इसको मासिक धर्म कहते हैं, क्योंकि यह हर महीने में होता है। यह लाल रंग का और तरल होता है। इसका पहले-पहल निकलना रजोदर्शन कहलाता है और बाद उसी का नाम ऋतु, आर्त्तव, रजस्वला या मासिक-धर्म हो जाता है। यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि गर्भाशय का योनि से क्या सम्बन्ध है, क्योंकि यह जाने बिना इस बात का समझना असम्भव हो जायगा कि गर्भाशय से वह आर्त्तव किस प्रकार बाहर निकलता है।

गर्भाशय वस्ति-गह्वर में रहता है। इसके सामने मूत्राशय और पीछे मलाशय होता है। इसका आकार तीन इञ्च लम्बा, दो इञ्च चौड़ा और एक इञ्च मोटा होता है। एक बार गर्भ रह चुकने पर इससे किंचित् बड़ा आकार हो जाता है। गर्भाशय का वजन ढाई तोले से साढ़े तीन तोले तक होता है। इसका ऊपरी भाग मोटा होता है और नीचे का भाग पतला। नीचे का भाग योनि से जुटा रहता है। नीचे के भाग में एक छिद्र होता है जो गर्भाशय का बहिर्मुख कहलाता है। गर्भाशय भीतर से पोला होता है। उसके अन्दर बहुत कम जगह रहती है। गर्भ स्थिति होने पर वह धीरे-धीरे बड़ा होता है और तीसरे मास उसका ऊपरी भाग पेट की दीवार टटोल कर मालूम किया जा सकता है।

इससे जाना जा सकता है कि गर्भाशय से योनि का कितना निकट सम्बन्ध है। रजो-दर्शन इस बात की सूचना देता है कि कन्या के यौवनकाल का अब आरम्भ हो गया। उक्त अवस्था से लेकर ४५—५० वर्ष की आयु तक स्त्रियों का मासिक-धर्म प्रति मास जारी रहता है, बाद बन्द हो जाता है। फिर स्त्रियाँ गर्भ धारण नहीं कर सकतीं। इसे रजो-निवृत्ति कहते हैं। जब गर्भ-स्थिति हो जाती है, तब मासिक-धर्म बन्द हो जाता है। कितनी ही स्त्रियों को गर्भ-स्थिति में भी मासिक धर्म होता रहता है, पर ऐसा बहुत कम देखने में आता है।

हम पहले ही कह आये हैं कि मासिक-धर्म में ऋतु-स्राव की अवधि कम से कम १ दिन और अधिक से अधिक ६ दिन है। तथा इससे अधिक स्राव का होना रोग का लक्षण है। किन्तु बहुधा ३—४ दिन ही स्राव जारी रहता है। यह मासिक-धर्म रजो-दर्शन होने के बाद २८—३० दिन पर बराबर होता रहता है। अधिक मैथुन से अथवा रोगी शरीर होने से आर्त्तव आगे पीछे भी होता है, किन्तु यह बड़ा ही हानिकारक है। मासिक-धर्म ठीक महीने भर बाद होना तन्दुरुस्ती का लक्षण है, यों दो एक दिन आगा-पीछा हो जाय तो बात दूसरी है। मासिक-धर्म की गड़बड़ी से गर्भाशय भी विकार-युक्त हो जाता है। अतः ऐसी अवस्था में उपचार करना बहुत ही आवश्यक है। बहुत सी स्त्रियों को मासिक धर्म के समय कुछ पीड़ा होती है। यह भी रोग का लक्षण है।

मासिक धर्म में जरा भी वेदना नहीं होनी चाहिए। बहुधा स्त्रियाँ मूर्खता के कारण इस बात को जानतीं ही नहीं कि मासिक-धर्म का निश्चित समय पर न होना तथा उस समय एक प्रकार की वेदना का होना भी कोई रोग है। और जो जानती भी हैं, वे इस बात को प्रकट करने में संकोच करती हैं। किन्तु यह बहुत बुरी बात है। मासिक-धर्म में जरा भी गड़बड़ी होने पर उन्हें फौरन प्रकट कर देना उचित है और फिर सावधानी के साथ किसी अनुभवी व्यक्ति की दवा से उस गड़बड़ी को दूर कर देना उनका कर्त्तव्य है। यदि इस दोष को बहुत जल्द नहीं हटाया जाता तो स्त्री की तन्दुरुस्ती आजन्म के लिए नष्ट हो जाती है। फिर तो दुनियाँ उनके मासिक-धर्म की खराबी को जान जाती है—जिसे बतलाने में वे संकोच करती थीं, और रोग भी पुराना हो जाने पर बड़ी कठिनाई से अच्छा होता है। इस लिए प्रत्येक स्त्री का कर्त्तव्य है कि इस बात की शिकायत मालूम होने पर वह उपचार करने में जरा भी विलम्ब न करे। इस बात को अनुचित लज्जा के कारण छिपाना कदापि उचित नहीं। रोग में लज्जा किस बात की? भला जिस बात के ऊपर जीवन का सारा आनन्द, सुख और शान्ति निर्भर है, उसको लज्जा के कारण छिपाकर जीवन को चौपट करके जन्म भर कष्ट भोगना मूर्खता नहीं तो और क्या है? शरीर में व्याधि को पाल-पोस कर बढ़ाना ही मूर्खता है। शत्रु को बढ़ाना उचित नहीं। जिस स्त्री के मासिक-धर्म में अनि-

यमितता होती है यानी कभी दस-बीस दिन अवधि के आगे होता है और कभी दस-पाँच दिन अवधि के पहले, उस स्त्री से पैदा होनेवाली सन्तान कभी भी जीवित नहीं रहती—अवश्य थोड़ी अवस्था में ही मर जाती है।

स्मरण रहे कि सन्तान पैदा करने में मासिक-धर्म की नियमितता प्रधान चीज है। मासिक-धर्म में स्त्रियों के शरीर का विकार सा निकल जाता है। ठीक समय पर रजस्वला होनेवाली स्त्रियों का चित्त हमेशा प्रसन्न रहता है और महीने महीने स्राव बन्द होने के बाद तो उनका काया-कल्प सा हो जाता है। उस समय उनके चेहरे पर स्वाभाविक ही रौनक आ जाती है, शरीर हल्का हो जाता है, चित्त में प्रसन्नता का समावेश हो जाता है और हृदय में अपूर्व शान्ति का स्रोत बहने लगता है। इसी से रजो-धर्म होने पर स्त्रियों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इस बात की महर्षियों ने पूरी ताकीद की है, जो कि आगे चलकर बतलाया जायगा। यह कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं है कि इस पर ध्यान न दिया जाय।

यह आर्त्तव रक्तमय स्राव है और गर्भाशय से निकलता है। यह रक्त की भाँति शीघ्र नहीं जम सकता। इसका रंग लाल और कुछ काला लिए होता है। आर्त्तव का परिमाण सब स्त्रियों में समान नहीं होता। अधिकतर इसका परिमाण एक छटाँक से चार छटाँक तक होता है। वैद्यक ग्रन्थों ने एक दिन में इसके

अधिक या कम स्राव का होना भी रोग का चिन्ह बतलाया है। ऋतुमती रहने तक प्रायः स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक दशा परिवर्त्तन हुआ करती है, आलस्य और अरुचि की अधिकता रहती है; कमर, नितम्ब और पेड़ू में भारीपन रहता है।

शुद्ध वीर्य और रज की परख

सन्तान उत्पन्न करने के लिए शुद्ध वीर्य, शुद्ध गर्भाशय और शुद्ध रज की नितान्त आवश्यकता है। यदि ये शुद्ध न हों—विकार-युक्त हों, तो गर्भ रहना कठिन हो जाता है। यदि गर्भ रह भी जाता है तो सन्तान रोगी, कमजोर और अल्पायु होती है। पहले हम शुद्ध वीर्य की पहचान बतलाते हैं। जो वीर्य सफेद हो न बहुत पतला हो और न गाढा, चिकना हो, जिसमें शहद के समान गन्ध हो, जिसके स्खलित होने पर किसी प्रकार की वेदना न हो और जो पानी में डालने पर डूब न जाय उसे शुद्ध वीर्य समझना चाहिए। यदि इससे भिन्न प्रकार के लक्षण पाये जायें तो समझना चाहिए कि वीर्य में विकार है, गर्भाधान करने के योग्य नहीं है। फिर किसी अनुभवी मनुष्य से वीर्य की शुद्धि के लिए उपचार कराना चाहिए।

यह वीर्य पित्त, कफ, वात और रक्त आदि के प्रकोप से दूषित होता है। दूषित वीर्य की सुश्रुतसंहिता में यह पहचान लिखी है:—

पित्त-दूषित वीर्य—इसमें वीर्य का रंग नीला और जर्द होता है तथा स्खलित होते समय जलन होती है।

कफ-दूषित वीर्य—यदि वीर्य का रंग सफेद हो किन्तु कुछ जर्दी लिए हुए हो तथा स्खलित होते समय हलकी सी वेदना (पीड़ा) हो तो उसे कफ-दूषित समझना चाहिए।

वात-दूषित वीर्य—यदि कुछ सुर्खी और कालिमा हो तथा रुक रुक कर स्खलित हो तो वात दूषित समझना चाहिए।

रक्त-दूषित वीर्य—यह मटमैला और सुर्खी लिए हुए होता है और इसमें मुर्दे की सी गन्ध होती है। स्खलित होते समय जलन होती है तथा एक बार में बहुत-सा वीर्य निकल जाता है।

कफ-वात मिश्रित दोष—यह दोष हो जाने पर वीर्य में गाँठें पड़ जाती हैं। इसी प्रकार कफ और पित्त का दोष होने पर वीर्य मवाद (पीप) के समान होकर दुर्गन्ध-युक्त हो जाता है। जब वीर्य में त्रिदोष होता है, तब उसमें मल-मूत्र की सी बू आने लगती है तथा इनका कुछ अंश भी उसमें आ जाता है।

अब शुद्ध रज की पहचान देखिये। जो रज खरगोश के खून के समान अथवा लाख के रंग के सदृश्य हो, जिसमें रंगा हुआ वस्त्र काले पीले रंग का न हो—सुर्ख रहे और धोने पर बिलकुल साफ हो जाय उसे शुद्ध रज समझना चाहिए। रज के दूषित होने के वे कारण हैं जो वीर्य के दूषित होने के हैं।

स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य की अवधि

स्त्री-ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अधिक न लिखकर वेद शास्त्र का प्रमाण दे देना यथेष्ट है:—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दतेपतिम् ।

—अथर्ववेद

पञ्चविंशे ततोवर्षे पुमान्नारी तु षोडशे ।
मनत्वा गतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलोभिषक् ॥

—सुश्रुत

अर्थात्—ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद कन्या अपने योग्य युवक-पति को प्राप्त करती है ।

यदि हम अपनी बुद्धि से विचार करते हैं, तब भी यह बात उचित जँचती है कि पुरुष-स्त्री को ईश्वर की ओर से समान अधिकार है—वेद पढ़ने का । बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस स्त्री-समाज पर पुरुष-जाति की उन्नति और अवनति निर्भर है उसे ही लोग वैदिक ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार नहीं देते । शास्त्र-कारों का वचन है.—"नास्ति मातृ समोगुरुः" यानी माता के समान गुरु संसार में कोई नहीं है ! सोचने की बात है कि यदि माता ही मूर्ख रहेगी तो उसकी सन्तान सतोगुणी और विद्वान कैसे होगी ?

अब यह देखना चाहिये कि स्त्रियों के ब्रह्मचर्य का काल क्या है। स्त्री-शरीर में साधारणतया ११-१२ वर्ष की अवस्था में रज की उत्पत्ति होती है और वह रज सोलह वर्ष की अवस्था में परिपक्व हो जाता है। इसलिए रज के उत्पन्न होने के समय से लेकर उसके परिपक्व होने के समय तक उन्हें ब्रह्मचारिणी रहकर विद्याभ्यास करना चाहिए। उसे योग्य पति यानी २५ वर्ष की अवस्था के पढ़े-लिखे पुरुष के साथ—विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना उचित है। यहाँ पर यह ध्यान रहे कि पुरुष-शरीर में वीर्य की जितनी परिपक्वता २५ वर्ष की अवस्था में होती है, स्त्री-शरीर में रज की उतनी परिपक्वता १६ वर्ष की अवस्था में हो जाती है। इससे कम अवस्था में पुरुष-संयोग होने से स्त्रियाँ कमजोर हो जाती हैं और साथ ही सन्तान उत्पन्न होने पर वह सन्तान छोटी ही अवस्था में मर जाती है। ऐसी स्त्रियाँ आजन्म रुग्णा रहती हैं और संसार-सुख उन्हें सदा के लिए स्वप्न हो जाता है।

ऋतुकाल में स्त्रियों के कर्त्तव्य

ऋतुकाल में स्त्रियों को बड़ी ही सावधानी से रहने की आवश्यकता है। क्योंकि सन्तानोत्पत्ति का कार्य यहीं से आरम्भ होता है। जिस प्रकार बीज डालने से पहले खेत को दुरुस्त किया जाता है, उसी प्रकार गर्भ धारण करने के पहले स्त्री को अपना मन शान्त करना पड़ता है। शास्त्रकारों का वचन है कि ऋतुकाल में स्त्री कोई भी कार्य न करे और एकान्त वास करे। एकान्त में रहने से मन में शान्ति आती है। जिस प्रकार प्लेट लगे हुए 'कैमरा' (चित्र खींचने का यन्त्र) के सामने जो दृश्य आता है, उसी का चित्र प्लेट पर अङ्कित हो जाता है, उसी प्रकार ऋतुकाल से लेकर प्रसव-पर्यन्त स्त्री के मन पर पड़े हुए प्रभावों का सन्तान पर असर पड़े बिना नहीं रहता। स्त्री को चाहिए कि वह तीन या चार दिन तक गृहस्थी के सब कामों से अलग रहे और शान्ति-पूर्वक अच्छी-अच्छी बातों पर विचार करे। ऋतुकाल से निवृत्ति होने के बाद स्नान करे और सबसे पहले अपने स्वामी का दर्शन करे। इसके बीच में उसे ऐसे ढंग से रहना उचित है कि जिसमें किसी की भी मूरत उसकी आँखों के सामने न आवे। कुछ अनुभवी विद्वानों का कहना है कि ऋतुस्नान के बाद स्त्री पहले-पहल जिसे देखती है, उसीके रूप का बच्चा उसके गर्भ से उत्पन्न होता है। कई जगह ऐसा ही देखने में भी आया है। जो भी हो, इतना

तो अवश्य कहा जायगा कि यह समय स्त्री के शान्ति लाभ करने का है। और संसार के दृश्यों से अपने चित्त को खींच कर अपने स्वामी के प्रेम में एकाग्र करने का है। इस लिए ऋतु-स्नान के बाद पति का दर्शन करना उचित है। जो स्त्री पहले ही से ऐसा अभ्यास रखती है, वही गर्भाधान के समय उक्त नियमों का पालन कर सकती है।

एकान्तवास में बहुत से गुण हैं। सबसे बड़ा लाभ इससे यह होता है कि अनायास ही बहुत सी बुराइयों से छुटकारा मिल जाता है। उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए बुराइयों से दूर रहना बहुत जरूरी है। लिखा है:—

ऋतुकाल में हिंसा करने वाली स्त्री की सन्तान निर्दयी और हिंसा करने वाली होती है। जो स्त्री इस समय ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करती, उसके गर्भ से पैदा होने वाला बालक मूर्ख, अल्पायु और व्यभिचारी होता है। इस समय स्त्री को कुशा की शैया पर सोना चाहिए और अपने पति का मुख भी न देखना चाहिए। मिट्टी के बर्तन में अथवा पत्तल पर मिर्च-मसालों से रहित सात्विक भोजन करना उचित है। ऋतुमती स्त्री अपनी आँखों से आँसू भूलकर भी न बहावे। इस अवस्था में जो स्त्री रोती है, उसके गर्भ से पैदा होनेवाला बच्चा सुन्दर नेत्रों वाला कदापि नहीं होता। इस समय नाखून काटना भी मना है। शरीर में तेल-उबटन लगाना, चन्दनादि लेप करना, आँखों में सुरमा लगाना, दिन में

वीर्यकीट और रजोकोष का मिलाप ।
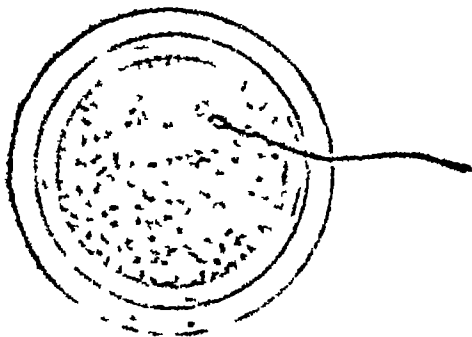
चित्र नम्बर २
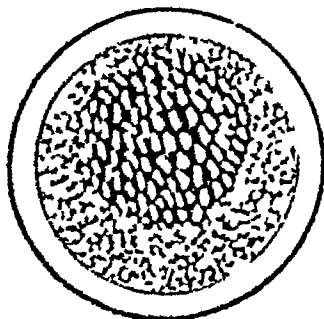
प्रथम पद ।

सोना, बालों पर कंघी फेरना, ऊँचा शब्द सुनना, हँसना, बहुत बोलना, अनायास ही नाखून से जमीन की मिट्टी खोदना और तेज हवा में बैठना भी ऋतुमती स्त्री के लिए वर्जित है।

स्मरण रहे कि ऋतुकाल में गड़बड़ी हो जाने से ठीक उसी प्रकार सँभलना कठिन हो जाता है, जैसे कमजोर नींव के होने पर मकान का। इसलिए स्त्री-पुरुष रूपी शिल्पकारों को सु-सन्तान रूपी महल बनाने के लिए अपने-अपने काम पर पूर्ण रीति से तत्पर रहना चाहिये। किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आजकल स्त्रियाँ अपनी मूर्खता के कारण ऋतुकाल में उलटा काम करती हैं। जहाँ इस समय उन्हें एकान्त में रहकर शान्ति लाभ करने की आज्ञा शास्त्रकारों ने दी है, वहाँ वे ऋतुकाल में निठल्ली रहने के कारण और दिनों की अपेक्षा भी अधिक बखेड़े की बातें करतीं और व्यर्थ की बातें करके अपने चित्त को व्यग्र और क्षुभित करती हैं। खेद है! सदुपयोग के स्थान पर दुरुपयोग!

स्त्री-पुरुष की रचना काम-पिपासा बुझाने के लिए नहीं हुई है बल्कि प्रकृति ने इनकी रचना उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए की है। कामाग्नि बुझाते समय जो गर्भ रह जाता है, उससे देश का हित होने के बदले सर्वनाश हो रहा है। आजकल बच्चे पैदा हो जाते हैं, पैदा किये नहीं जाते; किन्तु इसका कटु फल क्या माता-पिता को नहीं भोगना पड़ता? जहाँ देखो, वहीं बाप-बेटे और माँ बेटे में झगड़ा हो रहा है—एक दूसरे को फूटा ही

खा जाने की ताक में है। इसका क्या कारण है ? यही कि बच्चे शास्त्र-विहित ढंग से पैदा नहीं किये जाते। भला यह अपने हाथों से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना नहीं तो और क्या है। इस लिए हमारी माताओं और बहनों को सन्तानोत्पत्ति की सारी बातें अच्छी तरह से जानकर उनके अनुकूल चलना चाहिये। सन्तान पैदा की जाती है सुख के लिए, न कि दुःख के लिये।

इस लिए स्त्रियों को हमेशा यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वे जैसा आचरण करेंगी, वैसे ही आचरण वाली उनकी संतान होगी। जो स्त्री सन्तान-सुख भोगना चाहे, संसार में अपनी अक्षय कीर्त्ति छोड़ जाना चाहे, उसको उचित है कि वह सारी बुराइयों से दूर रहे और अपने सब कामों को मर्यादा के भीतर रक्खे, झूठ न बोले, चोरी न करे, किसी से कलह न करे, सब पर प्रेम रक्खे, अच्छी-अच्छी बातें सोचे, उत्तम पुस्तकें पढ़े, पवित्रता से रहे, जहाँतक बने, देश, जाति, और कुल की भलाई करे, मन को बुरे कामों की ओर कभी भी बहकने न दे, क्षणिक आनन्द के लिये गर्भाधान के अतिरिक्त अधिक पति-समागम न करे, ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रक्खे। इस प्रकार के व्यवहार से रहकर जो स्त्री तीसरे या चौथे दिन रजो-निवृत्ति होने पर शुद्ध स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहन शृङ्गार आदि से सुसज्जित हो सन्तान की कामना से पीछे कही गयी बातों पर विचार करके पति समागम करती और गर्भ धारण करती है तथा प्राचीन ऋषियों के कथनानुसार आचरण

करके गर्भ की रक्षा करती है, उसकी सन्तान सर्वगुण-सम्पन्ना, माता-पिता पर श्रद्धा-भक्ति रखने वाली, सुन्दर और संसार में प्रशंसा प्राप्त करनेवाली अवश्य होती है, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है।

यदि पुत्र की कामना हो तो स्त्री को आन्तरिक प्रेम-पूर्वक अपने पति के मुख का दर्शन करना चाहिए अथवा जैसी सुन्दर सन्तान की मन में लालसा हो उसी प्रकार के अत्यन्त सुन्दर चित्र का अवलोकन करना चाहिये और उसका स्वरूप गर्भाधान होने के समय तक अपने हृदय पर अंकित कर लेना उचित है। उसे इतना ध्यान-पूर्वक देखना चाहिए कि आँखें बन्द कर लेने पर भी वह चित्र ठीक-ठीक ध्यान में आ जाय। यदि कन्या की इच्छा हो तो स्नान करने के बाद दर्पण में अपना मुख देखना चाहिये अथवा किसी सुन्दरी स्त्री या स्त्री-चित्र को देखकर अपने हृदय में अंकित कर लेना चाहिए।

गर्भाधान

संयोग के समय स्त्री-पुरुष से जितना वीर्य्य और रज उत्पन्न होता है, उसमें सैकड़ों जन्तु रहते हैं, किन्तु गर्भाधान करने में वे सबके-सब काम में नहीं आते। स्त्री कोषों में से एक कोष और वीर्य्य जन्तुओं में से एक जन्तु ही गर्भाधान के काम में आते हैं संयोग के समय ये दोनों गर्भाशय के समीप एक दूसरे में मिलते हैं।

गर्भाशय एक झिल्ली का बना हुआ अवयव होता है। इसमें सिकुड़ने और फैलने की शक्ति होती है। गर्भाधान के लिए शुद्ध वीर्य-रज और निर्विकार गर्भाशय की कितनी आवश्यकता है, यह पहले कहा जा चुका है। अब चौथी आवश्यकता संयम की होती है। जिस प्रकार कुसमय में बोया हुआ उत्तम बीज भी फलदायक नहीं होता, उसी प्रकार असमय में वीर्य्यदान करने से गर्भ स्थित नहीं होता। स्त्री के मासिकधर्म से शुद्ध होने के बाद गर्भाधान का उत्तम समय आता है। क्योंकि मासिक धर्म होने पर ही गर्भाशय शुद्ध और गर्भ धारण करने के योग्य होता है। इसलिए इसके निमित्त यही समय मुख्य माना गया है। मासिकधर्म होने के दिन से चार या पाँच दिन तक यानी जब तक स्त्री शुद्ध न हो जाय तब तक स्त्री प्रसङ्ग भूलकर भी न करना चाहिए। क्योंकि रज-स्राव के समय पहले तो गर्भ स्थिति होती ही नहीं और यदि किसी कारणवश गर्भ रह भी जाता है तो दुःख देनेवाली सन्तान

पैदा होती है। इस समय स्त्री-प्रसंग करने से कभी-कभी स्त्री-पुरुष को भयङ्कर रोग भी आ घेरता है। इसलिए ये रात्रियाँ सर्वथा त्याज्य हैं।

जान पड़ता है कि इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने रजस्वला स्त्री को पहले दिन चाण्डालिन के समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के समान समझने की आज्ञा दी है। यदि रज-स्राव तीन दिन में बन्द न हो तो चौथा और पाँचवाँ दिन भी त्याज्य है। रजस्वला होने के दिन से सोलहवीं रात्रि तक स्त्री गर्भ धारण कर सकती है। इतने दिनों तक गर्भाशय का द्वार खुला रहता है पश्चात् बन्द हो जाता है और उसमें नया रज एकत्र होने लगता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि रजस्वला हुए बिना ही स्त्री को गर्भ रह जाता है। इसका कारण बतलाते हुए आयुर्वेद के आचार्यों ने कहा है.—"रजस्राव हुए बिना ही स्त्री ऋतुमती हो जाती और गर्भ धारण कर लेती है, किन्तु ऐसा उसी समय होता है, जब दूध पीता हुआ बच्चा स्तनपान करना छोड़ देता है या दूध पीनेवाले बच्चे की मृत्यु हो जाती है अथवा किसी कारणवश बहुत दिनों से अपने पति से अलग रहना पड़ा हो इसलिए पति से मिलने की इच्छा उसकी बहुत बढ़ गयी हो। यदि स्त्री में ये लक्षण पाये जायँ तो बिना रजस्राव हुए ही उसे रजस्वला समझना चाहिये—"स्त्री का मुख अत्यन्त प्रसन्न होने

पर, शरीर, मुख और मसूड़े गलगलाये हुए से होने पर, हाथ, स्तन, नाभि कमर और जंघा में स्फूर्ति रहने और आनन्द-युक्त से दिखलायी पड़ने पर।"

गर्भाधान के निमित्त संयोग करने के लिए मनुष्य को यह विचार करना बड़ा ही आवश्यक है कि भोजन अच्छी तरह पच गया और पेट हल्का हो गया है या नहीं। इसका खुलासा मतलब यह है कि भोजन करने के बाद कम से कम तीन घण्टा बाद पुरुष-स्त्री संयोग होना चाहिये। क्योंकि तीन घण्टे में भोजन की साधारण पाचन क्रिया हो जाती है। अन्यथा सन्तान का स्वास्थ्य बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है। संयोग के समय पुरुष-स्त्री दोनों का चित्त खूब प्रसन्न और एक दूसरे के प्रति सच्चा प्रेम होना चाहिए। मल-मूत्र त्याग की इच्छा होने पर संयोग से पहले ही उसे त्याग कर शुद्ध हो जाना ठीक है। उस समय न तो भूख लगी हुई होनी चाहिए और न अधिक भोजन से भारी पेट ही रहना उचित है। इसी प्रकार रात और दिन के सन्धिकाल में यानी सवेरे तथा दिन और रात के सन्धिकाल में अर्थात् सन्ध्या के समय सम्भोग कर्म न करना चाहिए। दिन में तो भूलकर भी विषय करना ही नहीं चाहिए। अर्द्धरात्रि के समय भी स्त्री-प्रसङ्ग करना गर्भाशय के लिए लाभदायक नहीं माना गया है।

जिस दिन गर्भाधान करना हो, उस दिन शाम को सात आठ बजे तक स्निग्ध और सुस्वादु-पूर्ण हल्का भोजन कर लेना चाहिए।

बाद तीन घण्टा बिताकर दस-ग्यारह बजे रात को—बारह बजे से पहले, वीर्य्यदान करना उत्तम है। क्योंकि संयोग के बाद गर्भ गर्भाशय में प्रवेश कर स्थित होने के लिए स्त्री को शान्ति के साथ आराम करने की आवश्यकता होती है। इसके बाद अधिक रात बिताकर संयोग होने पर स्त्री को शान्ति ग्रहण करने के लिए यथेष्ट समय नहीं मिलता, इसी से गर्भाधान के प्रकरण में हमारे आयुर्वेद के आचार्यों ने आधी रात का समय निषिद्ध ठहराया है। खासकर यही कारण है कि दिन में विषय करना भी मना किया गया है।

शुद्ध रजवाली स्त्री और दोष-रहित वीर्यवाला पुरुष दोनों सुगन्धित द्रव्यों को लगाकर शास्त्रोक्त दिन का विचार करके पुत्र की कामना से समागम करें। वह दिन ऐसा हो कि स्त्री ऋतु दोष से शुद्ध हो गयी हो। पुत्र की इच्छा रखनेवाला पुरुष प्रति दिन मिश्री डालकर गरम दूध पिये और सद्-ब्राह्मणों को दान-मान से संतुष्ट रखे। जिस दिन स्त्री रजस्वला होती है, उस दिन से युग्म रात्रि (यानी चौथी, छठीं, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात) में विषय करने से पुत्र होता है तथा अयुग्म (यानी पाँचवीं, सातवीं, नवीं, ग्यारहवीं और तेरहवीं और पन्द्रहवीं आदि) रात में विषय करने से कन्या उत्पन्न होती है। विचारवान लोग सारी बातों का विचार करके वाजीकरण द्रव्यों एवं निष्ठा से वीर्य को बढ़ा कर स्त्री के साथ गमन करें। जैसा आहार और आचार

होता है तथा जैसी चेष्टा होती है, उसी के अनुकूल उनकी सन्तान होती है। रज की अधिकता से कन्या और वीर्य की अधिकता से पुत्र की उत्पत्ति होती है। यदि रज और वीर्य दोनों की समानता होती है तो नपुंसक यानी हिजड़े की उत्पत्ति होती है। असमय में पुरुष स्त्री का संयोग होने से वीर्य निष्फल जाता है, गर्भ स्थित नहीं होता। पुरुष के वीर्यहीन होने पर भी स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती।

स्त्री कोष में पुरुष-जन्तु के मिश्रित होने के लिए पहले स्त्री और बाद तत्काल ही पुरुष के स्खलित होने की आवश्यकता है। स्त्री रज के निकलते ही पुरुष-वीर्य निकलने से स्त्री-कोष में पुरुष वीर्य-जन्तु प्रविष्ट हो सकता है। ऐसा होने पर दोनों का मिश्रण हो बच्चे का बीज बन जाता है। किन्तु बच्चे का बीज बन जाने की दशा में भी यदि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे से अलग हो जायँ अथवा स्त्री उठकर खड़ी हो जाय तो उस बीज के बाहर निकल जाने की बहुत बड़ी सम्भावना रहती है और गर्भ स्थित नहीं भी होता। इसलिए कुछ देर तक दोनों को उसी दशा में रहना चाहिए और पुरुष के हट जाने के बाद भी कुछ देर तक स्त्री को ज्यों की-त्यों पड़ी रहने की जरूरत है। क्योंकि तत्क्षण हटने से या स्त्री के खड़ी हो जाने से बीज का बाहर निकल आना सम्भव रहता है।

गर्भाधान न होने के कारण

कोई-कोई स्त्री, पति-संसर्ग होने पर भी आजन्म गर्भ धारण नहीं करती। इसके कई कारण हैं जो कि नीचे दिये जाते हैं।

१—वीर्य, रज तथा गर्भाशय के शुद्ध न होने से गर्भ स्थिति नहीं होती। इन तीनों में से यदि एक भी सदोष होता है, तो गर्भाधान नहीं होता। इसलिये सबसे पहले इनकी जाँच करनी चाहिये।

२—संयोग के समय यदि स्त्री पहले स्खलित हो जाय और पुरुष उसके बाद स्खलित हो, अथवा पुरुष पहले और स्त्री पीछे स्खलित हो, तब भी गर्भ स्थित नहीं होता। गर्भ स्थिति के लिए दोनों का एक साथ स्खलित होना आवश्यक है।

३—संयोग के बाद स्त्री खड़ी हो गयी अथवा उसने अंट-संट चीजें खा लीं, तब भी स्थित हुआ गर्भ पानी की तरह बाहर निकल आता है—मालूम नहीं होता। इसलिए संयोग के बाद स्त्री को बहुत सावधानी के साथ रहकर अपने खाने-पीने और काम धन्धे में बहुत सावधानी रखनी चाहिये। क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था बड़ी ही नाज़ुक होती है।

४—अधिक विषय करने से भी गर्भ स्थित नहीं होता। कारण यह कि संयोग की अधिकता से बच्चे को जीवन प्रदान करनेवाली शक्ति में कमी हो जाती है।

५—स्त्री-पुरुष में प्रेम का अभाव होनेसे भी गर्भ नहीं रहता। क्योंकि गर्भ को स्थित करने के लिए दोनों का प्रेम में लीन हो जाना आवश्यक होता है। कभी-कभी प्रेम न रहने पर भी गर्भ रह जाता है, किन्तु उससे जो सन्तान पैदा होती है, वह सर्वथा माता पिता को कष्ट देनेवाली, रूखे स्वभाव की और दुराचारी होती है।

६—जब गर्भाशय में वायु का प्रकोप हो जाता है, तब गर्भाधान नहीं होता। इसके पहचानने की रीति यह है—संयोग के बाद स्त्री का सिर काँपता हो तो समझना चाहिए कि वायु का प्रकोप है। इसका उपचार यह है.—चने के बराबर हींग लेकर शुद्ध तिल के तेल में पीस डाले, बाद उसमें थोड़ी सी साफ रुई तर करके तीन दिन तक (ऋतुकाल में) योनि में रक्खे और शुद्ध होने पर उसे निकाल बाहर कर दे, बाद गर्भाधान करे।

७—गर्भाशय पर माँस का बढ़ जाना। यदि कमर में दर्द हो तो समझना चाहिए कि गर्भाशय पर माँस बढ़ गया है, इसी से गर्भ स्थित नहीं हो रहा है। इसके लिए काला जीरा और हाथी का नख रेंड़ी के तेल में पीसकर ऊपर के अनुसार।

८—यदि छाती में दर्द हो तो समझना चाहिए कि गर्भाशय में कीड़े पड़ गये हैं। ये कीड़े भी गर्भ के बाधक हैं। इसकी दवा यह है—हड़, बहेड़ा और कायफल को साबुन के पानी में पीसकर ऊपर के मुताबिक। याद रहे कि गर्भाशय में ठंढक के बढ़ जाने से

भी छाती में दर्द होता है। इस लिए इन बातों की पहचान योग्यता के साथ करनी चाहिये। क्योंकि ठण्ढक से जो दर्द होता है उसकी दवा इससे भिन्न है।

९—कभी-कभी गर्भाशय उलट जाता है। इस लिए ऐसी अवस्था में स्त्री-पुरुष का सयोग होने पर गर्भ नहीं रहता। जंघाओं में दर्द का होना गर्भाशय के उलट जाने का लक्षण है। इसके लिए केसर और कस्तूरी को पानी में पीसकर ऊपर के अनुसार काम में लाना चाहिए।

१०—मासिक-धर्म न होने, ठीक समय पर न होने, रजस्राव उचित मात्रा से कम अथवा जियादा होने से भी गर्भ स्थिर नहीं होता। इसके लिए किसी अच्छे वैद्य या डाक्टर से इलाज कराना उचित है। यदि यह दोष होने पर उचित उपचार नहीं किया जाता तो स्त्री का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है—कभी कभी तो इसके कारण स्त्री को अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है। इसलिए इस रोग की दवा करने में जरा भी सुस्ती करना ठीक नहीं। मासिक-धर्म का एकदम न होना वायु और कफ के प्रकोप का कार्य है। इन दोनों के प्रकोप से रज-स्राव का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसके लिए खट्टे, उष्ण तथा तीखे पदार्थों का यथाशक्ति सेवन करना लाभदायक होता है।

११—प्रदर, गर्मी तथा सुजाक आदि रोगों के कारण भी गर्भ की स्थिति में बाधा पड़ती है।

१२—गर्भ स्थिर न होने का कारण नपुंसकता भी है, जो मनुष्य स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा करे, लेकिन अपनी निर्बलता के कारण इच्छा पूरी न कर सके या स्त्री के पास जाते ही जिसका पतला वीर्य अपने आप ही निकल जाय, दम फूलने लगे, उसे नपुंसक कहते हैं। भावप्रकाश में सात प्रकार की नपुंसकता लिखी है'—

क्लीब स्यात्सुरता शक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते।
तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते॥

—भावप्रकाश

मन की निर्बलता के कारण उत्पन्न हुई नामर्दी को 'मानस क्लैब्य', पित्त की अधिकता से पैदा हुई नामर्दी को 'पित्तज क्लैब्य' वीर्य की कमी के कारण होने वाली नपुंसकता को 'वीर्य-क्षय जन्य क्लैब्य', बीमारी के कारण नामर्दी को 'रोग-जन्य-क्लैब्य', वीर्य-वाहक नसों के कट जाने के कारण पैदा हुई नामर्दी को 'शिरोच्छेद जन्य-क्लैब्य, वीर्य के रोकने से उत्पन्न होनेवाली नामर्दी को शुक्र-स्तम्भन-क्लैब्य' और जन्म से ही नामर्दी को 'सहज-क्लैब्य' कहते हैं।

वन्ध्या प्रकार और उसकी चिकित्सा

वन्ध्या चार प्रकार की होती है। काकवन्ध्या, मृतवत्सा, गर्भ-स्रावी और आदिवन्ध्या या जन्मवन्ध्या।

काकवन्ध्या उसे कहते हैं जिस स्त्री के एक सन्तान होकर फिर गर्भ न रहे।

मृतवत्सा वह है, जिसके बच्चे पैदा होकर मर जायँ—जियें नहीं।

गर्भस्रावी उस स्त्री को कहते हैं जिस स्त्री के गर्भ स्थित हो-हो कर नष्ट हो जायँ।

आदिवन्ध्या, जो स्त्री कभी भी गर्भ धारण न करे।

ये चारों वन्ध्यायें ऊपर कही गयीं रक्त-पित्तादि दोषोंवाली वन्ध्याओं से सर्वथा भिन्न प्रकार की हैं। इनके अतिरिक्त आठ प्रकार की वन्ध्याएँ और होती हैं।

विपक्षी, शुभ्रती, सज्ञा, त्रिमुखी, व्याघ्रिणी, चक्री, कमली और व्यक्तिनी ये आठ प्रकार की वन्ध्याएँ और होती हैं। अब इनके लक्षण अलग-अलग कहे जाते हैं। जो स्त्री तीन पक्ष में ऋतुमती हो उसे 'त्रिपक्षी वन्ध्या' कहते हैं। दोनों जीरे खुरा-सानी वच, ककोड़े का फूल इन चीजों को बराबर-बराबर लेकर चावल के पानी में पीसकर सूर्य के सामने खड़ी हो तीन दिन प्रातःकाल पीना चाहिये और दूध तथा चावल के अतिरिक्त दूसरी

कोई भी चीज खाना उचित नहीं है। ऐसा करने से अवश्य गर्भ रह जाता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

शुभ्रती नाम की वन्ध्या का शरीर संकुचित सा रहता है और देह में विवर्णता रहती है। यह वन्ध्या कभी गर्भ धारण नहीं करती। नागकेशर ३ टंक, हाऊबेर ३ टंक, मोरशिखा ३ टंक और मिश्री १८ टंक लेकर महीन पीस डाले। बाद उसे कपड़छान करके तीन-तीन टंक की पुड़िया बना ले। सवेरे स्नान करने के पश्चात् एक पुड़िया एक वर्णी गाय के दूध के साथ सेवन करे और दूध-चावल का भोजन करे तो शुभ्रती वन्ध्या अवश्य गर्भ धारण करने में समर्थ हो।

जो स्त्री अनियमित समय में, कभी तो महीने के भीतर हो, कभी महीने में कई बार और कभी डेढ़ दो महीने बाद रजस्वला होती है उसे 'सज्जा वन्ध्या' कहते हैं। इसके लिए स्याह जीरा, सफेद जीरा, खुरासानी वच, मंजीठ, ककोड़ी हड़जोड़ी इन ओषधियों को बराबर भाग में ले चावल के पानी में महीन पीस-छान कर तीन दिन तक सवेरे सेवन करना चाहिए।

जो स्त्री भोजन और मैथुन से कभी तृप्त नहीं होती तथा सम्भोग के समय जिसकी योनि से जल निकले उसे त्रिमुखी वन्ध्या कहते हैं। यह भी गर्भ नहीं धारण करती।

'व्याघ्रिणी' वन्ध्या उसे कहते हैं, जिसके एक बच्चा अधिक अवस्था हो जाने पर पैदा हो और फिर गर्भ न रहे। इसके

लिए वही औषधि गुणकारी है जो त्रिपर्णा वन्ध्या के लिए लिखी गयी है।

जिस स्त्री के आठवें-दसवें दिन सफेद खून धातु के समान गिरे और कोई सन्तान न हो उसे 'वक्री वन्ध्या' कहते हैं। इस वन्ध्या के लिए किसी प्रकार की दवा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह वन्ध्यात्व कभी भी दूर नहीं हो सकता।

जिस स्त्री की योनि से निरन्तर पानी झरता रहे और गर्भ न रहे उसे 'कमलिनी वन्ध्या' कहते हैं। यह भी असाध्य है, किसी प्रकार की दवा करना बेकार है।

व्यक्तिनी वन्ध्या उसे कहते हैं जिसकी योनि से सफेद धातु प्रति दिन गिरे यानी सोम-प्रदर हो गया हो। लाल चिरायते के बीच, मिश्री, आँवला और रतनजोत को समान में भाग लेकर गो दुग्ध में पीस २१ दिन तक पीने से यह रोग दूर हो जाता है। जब सोम-प्रदर दूर हो जाय तब दोनों जीरे, काला अगर, केसर कड़ोड़ा मोरशिखा इन औषधियों को बराबर बराबर लेकर बछड़ा ब्यायी हुई गाय के दूध में पीसकर तीन दिन तक सेवन करना चाहिए।

यदि वन्ध्या स्त्री रजस्वला ठीक समय से हो, पर गर्भ धारण न करे तो समझना चाहिए कि उसका आर्त्तव दूषित है। यदि ऋतुकाल में जामुन के फल का सा काला रज निकले, कमर में शूल हो, पेट में जलन रहे, हाथ-पैर गरम रहे तथा रुधिर भी गरम निकले तो समझना चाहिए कि आर्त्तव पित्त दूषित है। कमलगट्टा,

तगर, कूट, मुलहठी और सफेद चन्दन इनको समान लेकर कूट डाले। बाद बकरी के दूध में पीस छान कर ऋतुकाल में तीन दिन आर्त्तव जारी रहे, पान करे। फिर लक्ष्मणा जड़ी को गऊ के दूध में पीस छान कर बारह दिन तक पान करे और सूँघे।

यदि ऋतुकाल में खून बहुत सूक्ष्म गिरे और उसका रंग कुसुम के रंग का हो, कटि तथा योनि में दर्द हो, ज्वर हो, तो वायु दूषित आर्त्तव समझना चाहिये। आम की जड़ का छिलका, दोनों कटेलियों की जड़, जामुन की जड़ का छिलका, इनको बराबर-बराबर लेकर गऊ के दूध में पीसकर ऋतुकाल में पीना चाहिए। बाद लक्ष्मणा जड़ी का सेवन ऊपर लिखे अनुसार करे। इससे वायु-दूषित वन्ध्यात्व मिट जाता है।

यदि रक्त चिकना और अधिक गिरे और उसका रंग बहुत लाल न होकर प्याज के रंग का सा हो तथा नाभि के पास पीड़ा हो तो कफ दूषित आर्त्तव समझना चाहिये। आक की जड़, मेंहदी, लौंग, नागकेसर, खरेटी की जड़, और गंगेरन की छाल, समभाग में लेकर बकरी के दूध में घोटकर पीने से कफ दूषित वन्ध्यात्व दूर होता है। अथवा आँवला, हड़, बहेड़ा, सोंठ, मिर्च, चीता इनको सम मात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीस-छान कर ऋतु-काल में पीने से भी उक्त दोष समूल नष्ट हो जाता है।

यदि ऋतुकाल में जोरों से बुखार हो, रक्त काला गिरे, वह रक्त बहुत गर्म और चिकना हो, काँख, योनि और कटि में शूल हो,

चित्र नम्बर ७
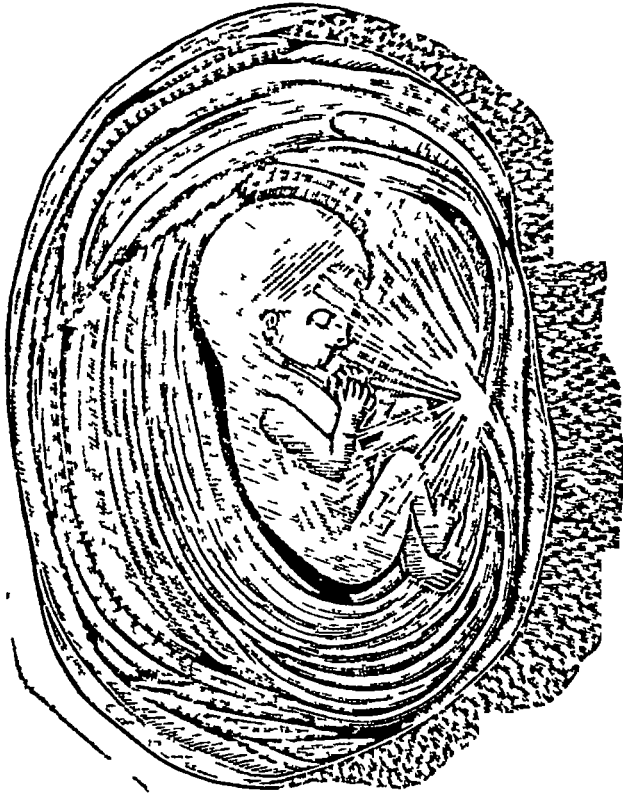
तीसरा महीना।

हड़ फूटन रहे, नींद अधिक आवे तो समझो कि सन्निपात दूषित वन्ध्यात्व है। अरंड (रेंडी) की छाल, आम की छाल, निसोथ, कमलगट्टा, तगर, कूट, मुलहठी, सफेद चन्दन, इनको सम मात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीस-छान कर सात दिन तक सेवन करे या रज-स्राव होने पर्यन्त सेवन करे। बाद योनि-विकार शुद्ध हो जाने पर आम की जड़, छोटी खटाई की जड़, लक्ष्मणा, बाँझ ककोड़ी, सफेद फूलवाली विष्णुकान्ता, इनको सम मात्रा में ले गाय के दूध में पीस-छानकर नासिका के दाहिने छिद्र से पीने पर पुत्र और वाम छिद्र से पीने पर कन्या उत्पन्न हो, वन्ध्यात्व छूट जाय। यहाँ पर यह बात ध्यान में रहे कि ऊपर जो औषधियाँ लिखी गयी हैं, उनका सेवन किसी अनुभवी वैद्य से राय लेकर करना चाहिये। क्योंकि लक्षण पहचानना बड़ा कठिन काम है।

प्रदर और प्रमेह

उत्तम और निरोग सन्तान पैदा करने के लिए माता-पिता का रोग-रहित होना अत्यावश्यक है। इस लिए स्त्री-पुरुष को रोग से दूर रहने के लिए पूरी चेष्टा करनी चाहिए। संयम से रहनेवाले मनुष्य को रोग नहीं घेरते। जो मनुष्य संयमी नहीं होता, उसी का रोग पीछा करता है। यदि कभी कोई भूल हो जाय और रोग आ घेरे तो तुरन्त ही उसके शमन का उपाय करना चाहिये और आगे के लिए पूर्ण रीति से सावधान हो जाना चाहिए। इस प्रकरण में दो ऐसे रोगों की चर्चा की जायगी, जिन्हें बहुधा लोग छिपाते हैं और जिसका फल यह होता है कि किसी-न-किसी दिन जीवन पर ही आ बनती है। ये दोनों ही महा भयानक और नाशकारी रोग हैं। उत्तम सन्तानोत्पत्ति के तो ये जानी दुश्मन ही हैं। एक का नाम प्रदर और दूसरे का नाम प्रमेह है। दो रोग एक से ही हैं। भेद केवल इतना ही है कि प्रदर रोग स्त्री को होता है और प्रमेह पुरुष को। पहले प्रदर रोग का वर्णन किया जाता है।

प्रदर रोग निर्बलता से हुआ करता है। यह रोग केवल स्त्रियों को ही होता है, पुरुषों को नहीं। अति मैथुन से, खट्टी, तीक्ष्ण चीजों के अधिक सेवन से, दिन में सोने से, अजीर्ण से, चिन्ता से, शोक से, चोट लगने से, मादक वस्तुओं के सेवन से, गर्भपात से, गर्भस्राव से तथा अप्राकृतिक भोजन करने से यह रोग उत्पन्न

होता है। इस रोग के लक्षण ये हैं,—प्रसवद्वार से पानी निकले (यह पानी कई तरह का होता है) स्त्री के शरीर में पीड़ा रहे, हड़फूटन हो और हरवक्त सुस्ती बनी रहे तो समझना चाहिये कि प्रदर रोग है। प्रसव-द्वार से निकलने वाला यह पानी झागदार, लसोड़ और चिकना होता है। यदि इसका रंग सफेद, पीला अथवा नीला हो तो जानना चाहिए कि रोग साध्य है, किन्तु यदि रुधिर बराबर निकले, किसी तरह भी न रुके प्यास अधिक लगे, हमेशा दाह बनी रहे, ज्वर हो, शरीर भी क्रमश क्षीण होता जाय तो असाध्य समझना चाहिये। इसका नाम भी असाध्य-प्रदर है।

यह रोग कई तरह का होता है—जैसे वात-प्रदर, पित्त-प्रदर, कफ-प्रदर, सन्निपात प्रदर, रक्त-प्रदर और असाध्य-प्रदर। यदि शुष्क रक्त निकले और वह फेनयुक्त हो, उसके निकलने में हलकी सी वेदना हो तथा मांस के पानी के समान हे तो वात प्रदर समझना चाहिए। रक्त पीले रंग का, नीला, सफेद या लाली लिए हुए गर्म तथा अधिक मात्रा में निकले, शरीर में दाह भी हो तो पित्त-प्रदर समझो। गोंद की तरह लसदार रुधिर निकले और उसका रंग पीला अथवा गुलाबी रंग का हो तो कफ-प्रदर जानो। शहद के समान, घी के समान, मुर्दे की सी गन्धयुक्त रुधिर निकलना सन्निपात-प्रदर यानी त्रिदोष युक्त प्रदर का लक्षण है। रक्त और पित्त के विकार से उत्पन्न होने वाले को रक्त-प्रदर कहते हैं। शरीर का कृष होना, मूर्छा आना, भ्रम होना, आँखों के सामने

अँधेरा छा जाना, देह का टूटना, शरीर में जलन होना, प्यास अधिक लगना, मन्दाग्नि होना, अजीर्ण होना इसके चिन्ह हैं।

इनके लिए बहुत सी औषधियाँ वैद्यक ग्रन्थों में लिखी गई हैं, फिर भी प्रसंगानुसार यहाँ कुछ औषधियों का लिख देना आवश्यक जान पड़ता है।

वात-प्रदर के लिए यत्न—मुलहठी, जीरा, कमलगट्टा, काला नमक, छः छः माशे लेकर काढ़ा बना ले, बाद ऊपर से शहद मिलाकर पी ले। इसके सेवन से वात-प्रदर दूर हो जाता है।

पित्त-प्रदर-यत्न—छः छः माशे मुलहठी और मिश्री को चावल के पानी में पीसकर सबेरे ही पी लिया करे।

सब तरह के प्रदर रोग की औषधि—सुपाड़ी के फूल, पिस्ते के फूल, मँजीठ, खिरयाली के बीज, ढाक वृक्ष की गोंद, इन सबको चार-चार माशे लेकर कूट डाले और उसे फाँक कर ऊपर से थोड़ा सा पानी पी ले। इसके सेवन से सफेद, पीला, स्याह, दुर्गन्धयुक्त सब तरह के प्रदर रोग जड़ से नष्ट हो जाते हैं। अथवा, १ तोला फालसा वृक्ष की छाल, रात को पानी में भिगो दे। बर्तन मिट्टी का और कोरा होना जरूरी है। सबेरे उस पानी में मिलाकर उसे पी जाय। इस दवा को पन्द्रह दिन तक करे। या कसेरा, माजूफल, पुरानी सुपाड़ी, धाय के फूल, गोंद और लोध, इन सब को पाव-पाव भर तथा मँजीठ ३ तोला, मोचरस ३ तोला, मेदा लकड़ी ३ तोला, सोंठ ३ तोला, सबको कूट-छान कर सेर भर

घी में भिगो दे। बाद दो सेर मिश्री की चासनी में इनके छटाँक-छटाँक के लड्डू बना डालो। प्रतिदिन सवेरे एक लड्डू खाने से सब तरह के प्रदर रोग दूर होते हैं।

रक्त-प्रदर-यत्न—आम की गुठली चूर्ण करके घी, चीनी और मैदा के साथ इसे पकाकर हलुआ बनाकर खिलाना हितकर है। या कुकरौंधा नामक बूटी को जड़-सहित कुचल कर एक तोला स्वरस निकाल लो; बाद उसमें शहद मिलाकर सुबह-शाम सेवन करो। इससे भी रक्त-प्रदर जल्द नाश हो जाता है।

यह तो प्रदर रोग का परिचय। अब प्रमेह की व्याख्या देखिये। हम पहले ही कह आये हैं कि यह रोग पुरुषों को हुआ करता है। यह भी प्रदर रोग की तरह निर्बलता के कारण ही उत्पन्न होता है। यह रोग बड़ा ही भयङ्कर है। इसके उत्पन्न होते ही यदि चिकित्सा नहीं की जाय तो यह जड़ पकड़ लेता है और कुछ ही दिनों में मधुमेह के रूप में परिवर्त्तित होकर असाध्य हो जाता है। फिर तो यह जीवन का अन्त किये विना विश्राम ही नहीं लेता। इस लिये प्रमेह की दवा करने में आलस्य करना जीवन से हाथ धोना है।

मिहनत न करने से, हस्त-मैथुन करने से, गुदा मैथुन करने से, अप्राकृतिक मैथुन करने से, अधिक स्त्री-प्रसंग करने से दिन-रात खूब सोने से, मादक वस्तुओं के सेवन से तथा मांस मछली खाने से यह संहार-कारी भयंकर रोग पैदा होता है।

प्रमेह के लक्षण

यह रोग जब होने वाला होता है, तब पहले दाँतों में मैल अधिक जमने लगती है, कण्ठ, जीभ और तालू में भारीपन मालूम होने लगता है, हाथ पैर में जलन शुरू हो जाती है, मुँह में मिठास होती है, प्यास अधिक लगती है, बाल आपस में चिपक जाते हैं, तथा समूचे शरीर में चिकनाहट आ जाती है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में यह रोग २० तरह का बतलाया गया है। कफज १० पित्तज ६ वातज ४ प्रकार का होता है।

कफज-प्रमेह

इक्षु-प्रमेह—पेशाब गन्ने के रस की तरह मीठा होता है। यह याद रहे कि हर प्रमेह में पेशाब के आगे-पीछे या पेशाबमें मिल-कर वीर्य गिरता है। किसी-किसी प्रमेह में तो उसका गिरना प्रतीत होता है और किसी किसी में बिलकुल दिखलायी नहीं पड़ता।

सान्द्र-प्रमेह—यदि रात को पेशाब किसी बर्तन में रख दिया जाय और सवेरे वह बिलकुल गाढ़ा हो जाय तो समझना कि सान्द्र-प्रमेह है।

उदक-प्रमेह—पेशाब एकदम सफेद, शीतल, गन्धहीन, थोड़ा और चिकना होता है।

शुक्र-प्रमेह—पेशाब वीर्य के समान होता है।

सुरा-प्रमेह—पेशाब ऊपर से शराब की तरह साफ और नीचे गाढ़ा होता है।

पिष्ट-प्रमेह—पिसे हुए चावल के पानी के समान और अधिक पेशाब होता है। मूत्र-त्याग करते समय रोमाञ्च हो आता है।

शीत-प्रमेह—पेशाब मीठा और अधिक होता है तथा ठंढक बहुत रहती है।

सिकता-प्रमेह—पेशाब में बालू के समान कड़े कण गिरते हैं। शीशी में रखने से ये कण मालूम होते हैं।

शनैर्मेह—पेशाब थोड़ा और रुक-रुक कर उतरता है।

लार प्रमेह—मुख की लार के समान चिकना पेशाब उतरता है।

पित्तज-प्रमेह

माजिष्ट-प्रमेह—पेशाब का रंग मजीठ के काढ़े के समान और दुर्गन्धयुक्त होता है।

रक्त-प्रमेह—पेशाब खून के समान लाल, खारा और दुर्गन्धयुक्त होता है।

हरिद्र-प्रमेह—पेशाब करते समय जलन होती है और उसका रंग हल्दी की तरह पीला होता है।

नील-प्रमेह—नीले रंग का पेशाब होता है।

क्षार-प्रमेह—खारे जल के समान वर्ण, रस, स्पर्श और गन्ध का पेशाब होता है।

काल-प्रमेह—काले रंग का पेशाब होता है।

वातज-प्रमेह

वसा-प्रमेह—चर्बी के समान पेशाब होता है।

मज्जा-प्रमेह—मज्जा मिला हुआ पेशाब होता है।

क्षौद्र-प्रमेह—शहद के रंग का, मीठा, रूखा और कषैला पेशाब होता है। यह पेशाब जहाँ गिरता है, वहाँ चीटियाँ और मक्खियाँ आ जाती हैं।

हस्ति-प्रमेह—रुक रुक कर तारदार और हाथी के मद जैसा पेशाब होता है। कभी-कभी पेशाब रुक भी जाता है।

—※—

प्रमेह नष्ट के उपाय

१—छः माशे महुआ-वृक्ष की छाल को ४ दाने काली मिर्च के साथ पानी में पीस छानकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

२—आँवला, हड़, और बहेड़े का चूर्ण (१ तोला) शहद मिलाकर चाटने से पुराना प्रमेह नष्ट हो जाता है।

३—शुद्ध लोह-भस्म, शहद के साथ चाटने से प्रमेह जाता रहता है। मात्रा बलाबल देखकर निर्धारित करनी चाहिए।

४—शुद्ध वंग-भस्म दो रत्ती जाड़े के दिनोंमें तो किसी साधारण गर्म चीज के साथ या केले के साथ और गर्मी के दिनों में

कुम्हड़े के मुरब्बे के साथ सेवन करने से सब तरह के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

प्रदर या प्रमेह के रोगी को लाल मिर्च, खट्टी-मीठी तथा कड़वी चीजें, वादी और गरिष्ट वस्तुएँ भूलकर भी न खानी चाहिएँ। मैथुन करना भी एकदम छोड़ देना उचित है। दवा का सेवन करते समय पूर्णरीति से ब्रह्मचारी बन जाना उचित है। तभी यह रोग दूर हो सकते हैं, अन्यथा दवा का सेवन करना व्यर्थ हो जाता है। सौ दवाओं से बढ़कर एक परहेज से रहना है।

—**—

बल-वीर्य-बर्द्धक महौषधि

इस प्रकरण में कुछ ऐसी औषधियाँ लिखी जायँगी, जिनसे शरीर में काफी बल-वीर्य की वृद्धि हो सकती है। किन्तु ये दवायें सिर्फ उन्हीं लोगों के लिए हैं जो दुराचार करके अधिक वीर्य क्षीण कर चुके हैं। यों तो ये ओषधियाँ सबके लिए लाभदायक हैं, पर संयमी और हृष्ट-पुरुष को इनके करने की आवश्यकता ही क्या है? संयमी पुरुष को तो जी-जान से बस एक ही दवा का सेवन करना चाहिए, बस वह संयम से बढ़कर दूसरी दवा संसार में कोई भी नहीं है।

१—जिस मनुष्य का धातु कम हो गया हो, उसे इस दवा का सेवन करना चाहिए—धाय के फूल, बड़ी हड़, बहेड़ा और

आँवला इन चारों चीजों को बराबर-बराबर लेकर ईख के रस में भावना दे, बाद धूप में सुखाकर सबों के बराबर मिश्री मिला शहद में रात को चाटे और ऊपर से शुद्ध दूध पी ले। इससे बल-वीर्य की वृद्धि होती है।

२—कौंच वृक्ष की जड़ दूध में पीसकर प्रति दिन सबेरे पीने से भी पुरुष का शरीर बलवान हो जाता है और खूब वीर्य पैदा हो जाता है।

३—कौंच वृक्ष की जड़, सफेद तिल, असगन्ध, विदारीकन्द साँठी चावल, इनको बराबर बराबर लेकर कूट डाले। बाद कपड़े से छानकर प्रतिदिन ६ माशे चूर्ण खाकर ऊपर से गरम दूध में घी डालकर पी ले। इसका एक महीने तक सेवन करने से शरीर में विचित्र परिवर्त्तन हो जाता है। हमेशा सेवन करे तो और भी अच्छा हो।

४—सूखे आँवले का चूर्ण ईख के रस में भिगोकर छाया में सुखा ले। इस प्रकार सात बार रस में भिगोकर सुखावे। बाद उसके बराबर शहद और मिश्री मिलाकर पका डाले और उसका प्रतिदिन सेवन करे। यह दवा स्त्री और पुरुष दोनों के लिए एक समान गुणकारी है।

५—शतावरी तेल बनाने की रीति—हरी शतावर को कूट कर २ सेर रस निकाल लेना चाहिए। बाद उसमें एक सेर तिल का तेल और ४ सेर गो-दुग्ध डालकर मन्दाग्नि से धीरे-धीरे पकावे

और इन दवाइयों को एक-एक तोला लेकर कल्क बनाकर उसमें पकते समय डाल देना चाहिए। सौंफ, देवदारु, बालछड़, छाल-छरीला, बच, लाल चन्दन, तगर, कूट, इलायची, अंशुमती, खरेटी रासना, असगन्ध, वायविडंग स्याहमिर्च, पीलपर्णी, दालचीनी, पत्रज, रेड़ी की जड़ का छिलका, सेंधा नमक और सोंठ। थोड़ी देर के बाद अदरख का अर्क डाल देना चाहिए। जब पक जावे, तब उसे उतार ले और स्वच्छ पात्र में छानकर रख दे। फिर इस तेल का मर्दन करे। यह तेल इतने रोगों पर जादू की तरह असर करता है:—

जो कुबड़े हों, बौने हों, महावात रोग से भग्न हों या त्रिसर्प रोग से पीड़ित हों उनके लिए यह तेल बड़ा लाभदायक है। शरीर के सकुञ्चित हो जाने में, सन्निपात में, गठिया रोग में, हृदय-शूल में, शिर दर्द में, नेत्र-पीड़ा में, कर्णशूल में, यह तेल तत्क्षण गुण दिखलाता है। गले के भीतर होने वाले रोगों का यह तेल नाश करता है। वीर्यहीनता, नपुंसकता, चित्त-भ्रम, इन्द्रिय निर्बलता, बुद्धिहीनता, मन्दाग्नि को यह फौरन दूर कर देता है। वन्ध्यात्व को भी यह दूर करने में समर्थ है। प्रमेह रोग, अँडवृद्धि रोग, पिल्ला रोग, कमलवाय, मृगी, कुष्ठ, दाह, ज्वर आदि रोगों को भी यह तेल नष्ट कर देता है। इस तेल को एक महीने तक पीने से वृद्ध मनुष्य भी यौवनत्व प्राप्त कर सकता है। इस तेल को सूँघने, पीने और मालिश करने में नित्य बर्त्तना चाहिए। यह शतावरी

तेल स्त्री और पुरुष दोनों के लिए लाभदायक है।

६—सफेद घुँघची का कपड़छान किया हुआ चूर्ण दूध के साथ सेवन करना भी वीर्य के लिए बड़ा ही गुणकारी है।

७—मुलहठी का चूर्ण एक तोला घी मिलाकर शहद में चाटे और ऊपर से दूध पी लिया करे तो बड़ा ही लाभ हो।

८—गोखरू, तालमखाना, सुफेद मुसरी, कोंच के बीज, गंगेरण की छाल और सहदेई जड़ी की जड़, इन सब चीजों को कूट-कपड़छान करके चूर्ण के बराबर की मिश्री मिला प्रतिदिन दूध के साथ सेवन करना चाहिये।

९—गरम दूध में घी डालकर प्रतिदिन सेवन करना भी बड़ा ही बलवर्द्धक है।

१०—सिम्मल की मुसली का रस ४ तोला लेकर उसमें एक तोला मिश्री मिलाकर पी जाया करे। यह दवा सात दिन में ही प्रभाव दिखलाती है।

११—शतावर, गोखरू, डाभ की जड़, सिंघाड़ा, गंगेरण की छाल, कोंच के बीज, इनको सम मात्रा में ले कूट-कपड़छान कर बराबर की मिश्री मिला एक तोला चूर्ण रोज रात को फाँककर ऊपर से दूध पी लिया करे तो वीर्य पुष्ट हो और शरीर में ताकत आवे।

—:※:—

गर्भ-स्थिति के लिये आवश्यक बातें

१—स्त्री-पुरुष को स्नानादि से स्वच्छ होकर पवित्र और साफ वस्त्र पहनना चाहिये। स्त्री यदि सफेद वस्त्र न पहनकर रंगीन पहने तो कोई हर्ज नहीं, पर इतना जरूर हो कि वस्त्र का रंग हल्का और सफेदी लिए हुए हो, जैसे मोतिया रंग। काला वस्त्र कभी न पहने।

२—शयन-गृह साफ-सुथरा और सफेदी किया हुआ होना चाहिए। उस घर में आवश्यक चीजों के सिवा अधिक चीजों का रहना ठीक नहीं है। बहुधा लोग अपने सोने के कमरे में अश्लील चित्र टाँगा करते हैं, किन्तु यह बहुत बुरी बात है। ऐसे चित्रों का बहुत ही बुरा असर सन्तान पर पड़ता है। कमरे में ऐसे ही चित्र हों, जिनके देखने से मानस में विकार उत्पन्न न हो बल्कि उत्पन्न हुए विकार नष्ट हो जायँ और स्वाभाविक ही हृदय में उच्च भाव पैदा हों।

३—कमरा उत्तम गन्ध से परिपूर्ण होना चाहिए। यदि कोई फूल हो तो वह भी सफेद रंग का ही हो जैसे—बेला चमेली आदि।

४—कमरे में न तो बहुत अन्धेरा रहे और न तीक्ष्ण प्रकाश ही हो; मन्द प्रकाश उत्तम है।

५—स्थान एकान्त और भय-रहित होना जरूरी है। गर्भाधान करने के समय चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ रहे।

६—इस आनन्द के समय में स्त्री-पुरुष को निर्लज्ज और निरंकुश नहीं हो जाना चाहिए; किन्तु अधिक लज्जा करनी भी ठीक नहीं। देखिये न; राजा विचित्रवीर्य की स्त्री ने लज्जा के कारण गर्भाधान के समय आँखों पर पट्टी बाँध ली थी, जिसका फल यह हुआ कि अन्ध-पुत्र धृतराष्ट्र पैदा हुआ। इसलिए इसका भी पूरा ध्यान रखना उचित है।

७—मादक वस्तु का सेवन इस दिन कभी न करे। प्यास लगी रहने या पानी पीकर तुरन्त गर्भाधान करने में प्रवृत्त न होना चाहिए। भूखे पेट या भारी पेट रहना भी इस समय के लिए ठीक नहीं है। शरीर शिथिल, किसी प्रकार के रोग से पीड़ित या निद्रा युक्त होने पर गर्भ स्थिति करने की चेष्टा एकदम त्याग देनी चाहिए।

८—सन्तान को जिस विषय में योग्य बनाना हो उसी विषय का दोनों को चिन्तन करना चाहिए और जिस रूप की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा हो, उसी रूप को हृदय में स्थिर करना उत्तम है।

९—पाँचवीं रात को गर्भाधान करने से कन्या उत्पन्न होती है, जो कि सुशीला और सच्चरित्रा होती है। छठी रात के गर्भ से मध्यम-गुण-सम्पन्न पुत्र पैदा होता है। सातवीं रात के प्रसंग से पहले तो कोई सन्तान ही पैदा नहीं होती और यदि होती भी है तो कन्या। आठवीं रात के गर्भ से कीर्त्तिवान और भाग्यशाली

पुत्र पैदा होता है। नवीं रात के गर्भ से भाग्यवती कन्या होती है। दसवीं रात के गर्भ से बल और ऐश्वर्यवान पुत्र पैदा होता है। ग्यारहवीं रात के गर्भ से दुश्चरित्रा और कुलटा कन्या पैदा होती है। बारहवीं रात के गर्भ से सुन्दर और गुणवान पुत्र पैदा होता है। तेरहवीं रात विशेष रूप से वर्जित है; क्योंकि इस रात के गर्भ से महान पापिनी कन्या पैदा होती है। चौदहवीं रात के गर्भ से सुशील, धार्मिक और सदाचारी पुत्र पैदा होता है। पन्द्रहवीं रात के गर्भ से परम सुन्दरी और पति-भक्ति-परायणा कन्या तथा सोलहवीं रात के गर्भ से परम धार्मिक, विद्वान और कुलदीपक पुत्र पैदा होता है। इसमें क्रमशः एक दूसरे से बढ़कर रात्रियाँ हैं। यानी पाँचवीं से छठी और छठी से सातवीं। सबसे उत्तम रात्रि कन्या उत्पन्न करने के लिए ऋतुकाल की पन्द्रहवीं रात है और पुत्र के लिए सोलहवीं रात। किन्तु पुत्र-कन्या उत्पन्न करने के लिए इसके सिवा वीर्य की पुष्टि भी आवश्यक है, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

—**—

चित्र नम्बर ३
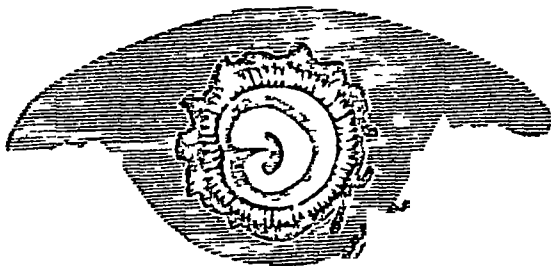
द्वितीय सप्ताह

चित्र नम्बर ४
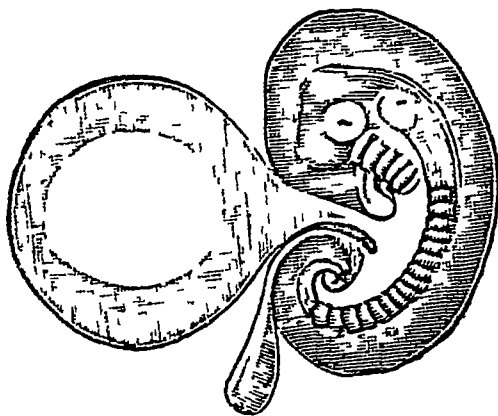
तृतीय सप्ताह

गर्भ-ज्ञान

गर्भ-स्थिति हो गयी या नहीं, यह जानने के लिए पहला चिह्न तो यह है कि जब गर्भ रह जाता है तब किसी-किसी स्त्री का जी दूसरे ही दिन मिचलाने लगता है, मुख का रंग बदल जाता है, शरीर में भारीपन आ जाता है। सबसे अच्छी पहचान महीने भर में होती है। वह इस तरह कि यदि मासिक-धर्म टल जाय, तब समझ लेना चाहिये कि गर्भ रह गया। क्योंकि गर्भ स्थिति हो जाने पर स्त्री-धर्म बन्द हो जाता है। किन्तु जिन स्त्रियों का मासिक-धर्म अनियमित रूप से होता है, उनके लिए यह लक्षण ठीक नहीं है। गर्भ रहने पर स्वाभाविक ही भोजन में अरुचि हो जाती है, शरीर में आलस्य आता है, कोई काम करने का जी नहीं चाहता पुरुष की ओर से भी रुचि हट जाती है, उल्टी होने लगती है, झूठी ओक भी आती है, लेटने की इच्छा हुआ करती है, कमर के नीचे सुस्ती अधिक आ जाती है, कभी-कभी सिर भी दुखने लगता है। गर्भिणी स्त्री खट्टी तथा सोंधी चीजें खाने के लिए बहुत उत्सुक रहती है। दस्त खुलासा नहीं होता, नींद अच्छी तरह नहीं आती, स्तनों के मुख छोटे हो जाते हैं और उन पर श्यामलता छाती जाती है। गर्भ के पहचानने की रीति एक यह भी है कि थोड़ी सी शहद पानी में मिलाकर पी लेने पर यदि थोड़ी देर के बाद टूँड़ी में कुछ दर्द होने लगे तो समझना चाहिए कि गर्भ अवश्य है और

यदि दर्द न हो तो जान ले गर्भ कदापि नहीं है। इस पहचान से बढ़कर कोई भी पहचान नहीं है।

संयोग के बाद ही पुरुष से तृप्ति, गर्भाशय में भारीपन, थकावट, छाती का फड़कना, रोम खड़े हो जाना आदि मालूम होता है।

कितनी स्त्रियों को तो गर्भ रहने के २-४ दिन बाद ही कै होने लगती है और कितनी को मासिक-धर्म टलने के बाद यह चिन्ह दिखलायी पड़ता है। किन्तु बहुत सी स्त्रियाँ गर्भ धारण करते हुए भी इन दोनों बातों से बरी रहती हैं; उनके सिर्फ मुख में थूक अधिक आता है। ढाई-तीन महीने का गर्भ हो जाने पर स्तनों का आकार भी बढ़ने लगता है; किन्तु बहुत सी स्त्रियों के स्तन में चार-पाँच महीने तक कोई परिवर्त्तन ही नहीं होता। तीसरे महीने से गर्भिणी का पेट भी बढ़ने लगता है और नाभि का गढ़ा धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। छः महीने तक गर्भ-नाभि के नीचे रहता है, बाद सातवें महीने से वह ऊपर चढ़ने लगता है। कभी-कभी रोग से भी पेट बढ़ जाता है। इसकी खास पहचान यह है कि गर्भ से बढ़ने वाला पेट बीच में ऊपर को कुछ उठा हुआ रहता है और रोग से बढ़ा हुआ पेट सर्वत्र समान रूप से बढ़ता है। चार-पाँच महीना बीत जाने पर तो गर्भ की पहचान और भी अधिक स्पष्टता से की जा सकती है। क्योंकि फिर तो पेट में बालक का फड़कना मालूम होने लगता है। किन्तु कई स्त्रियों के पेट में छः-सात महीने

तक किसी प्रकार की फड़कन नहीं प्रतीत होती। भूख प्यास की अवस्था में गर्भ अधिक डोलता है।

गर्भस्थ पुत्र पुत्री का ज्ञान

पेट में बालक पहले ही महीने में गोल जान पड़ता है। दाहिनी आँख कुछ बड़ी सी दीखती है। गर्भ में लड़का रहने पर दाहिनी जंघा भी मोटी और भारी मालूम होती है। उसमें कुछ दर्द भी हुआ करता है। दाहिने स्तन में दूध पहले उतरता है मुख का रंग अच्छा रहता है। स्वप्न में पुल्लिंग वस्तुयें ही दिखलायी पड़ती हैं, यदि मनुष्य का स्वप्न भी होता है तो पुरुष का ही। यदि गर्भवती के दूध में जूँ अथवा चींटी डालने पर वे जीती रहें और चलती-फिरती नजर आवें तो समझना चाहिए कि पुत्र उत्पन्न होगा और यदि मर जाय तो कन्या की उत्पत्ति होगी। लड़का दाहिनी कोख में रहता है। गर्भ में लड़का रहने पर स्त्री जो कुछ भी कार्य करेगी वह दाहिने अँग से ही प्रारम्भ करके। यदि चलेगी तो पहले दाहिना पैर उठेगा, उठेगी तो दाहिना हाथ टेक कर इत्यादि।

यदि पेट में कन्या होती है तो स्त्री का मस्तक भारी रहता है, तथा स्तनों का दूध पतला होता है। गर्भिणी के मुख का रंग पीला रहता है। इसके सिवा पुत्र के लक्षणों के ठीक विपरीत सब लक्षण दिखलायी पड़ते हैं।

यदि गर्भवती स्त्री को राजा का दर्शन करने की इच्छा निरन्तर हुआ करे तो समझना चाहिये कि महा भाग्यशाली और धनी सन्तान पैदा होगी। भूषण तथा रेशमी वस्त्रादि धारण करने की इच्छा होने पर सुन्दर और शौक़ीन तबीयत की सन्तान पैदा होती है। देव-मन्दिर में जाने, महात्माओं के दर्शन करने तथा धार्मिक कथायें सुनने की इच्छा होने पर शान्त स्वभाव की और धर्मपरायण सन्तान पैदा होती है। साँप, सिंह आदि हिंसक जानवरों के देखने की इच्छा होने पर हिंसक सन्तान उत्पन्न होती है। किन्तु इसमें कभी-कभी सन्देह भी रह जाता है, पर पाँचवें महीने में गर्भवती की जो इच्छा होती है, उससे अच्छी-बुरी सन्तान भली-भाँति जानी जाती है और वह जानकारी कभी भी झूठी नहीं होती सदा सत्य उतरती है। इसका कारण यह है कि इसी पाँचवें महीने में ही गर्भस्थ सन्तान में जीव का प्रवेश होता है।

पुत्र-कन्या पहचानने की एक और रीति है, इसकी सैकड़ों बार परीक्षा ली गयी है, एक बार भी झूठी नहीं हुई। वह यह है कि यदि किसी स्त्री के गर्भ का बालक जानना हो तो भँड़भाँड़ नाम की बूटी को सन्ध्या समय स्नान करा रक्षा लपेट शान्त-चित्त हो कह आवे कि "हे प्रभो, मैं इसे कल यह जानने के लिए उखाड़ूँगा कि अमुक स्त्री के गर्भ में पुत्र है या कन्या।" यह कहकर चला आवे। दूसरे दिन स्नानादि से निवृत्त होकर जाय और उसे उखाड़ ले। (यदि उसके काँटे अधिक कड़े हों तो कई तह करके

कपड़े लगाकर उखाड़े) यदि सीधी एक जड़ निकले तो पुत्र और दो जड़ निकलने पर कन्या जाने। किन्तु यदि वह जड़ ऊपर से ही टूट जाय तो समझना चाहिये कि सन्तान पैदा होकर मर जायगी या जियेगी भी तो बहुत ही कम दिनों तक। प्रसव वेदना के समय इसकी जड़ कपड़े में लपेट कर स्त्री की कमर में बाँध देने से तत्क्षण प्रसव हो जाता है, जरा भी देर नहीं लगती। किन्तु यह जड़ी तभी बाँधनी चाहिए, जब यह अच्छी तरह से मालूम हो जाय कि अब प्रसव होने में कुछ ही समय की देर है।

गर्भ में बालक की बनावट

गर्भाधान से चार महीने तक गर्भाशय का मुख बन्द रहता है। ज्यों ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों गर्भाशय भी बढ़ता जाता है और अंडाकार होकर नीचे को खिसकता आता है। छठे महीने गर्भाशय की नार बहुत छोटी और चिपटी होकर फैल जाती है। आठवें महीने में बिलकुल चिपटी हो जाती है। कभी तो सातवें महीने से ही और कभी नव महीने से गर्भाशय का मुख खुलने लगता है और बालक उत्पन्न होने के समय एकदम खुल जाता है।

गर्भाधान हो जाने पर पहले महीने में वीर्य जमता है। दूसरे महीने में उस पर पतली झिल्ली चढ़ती है। तीसरे महीने में शरीर का आकार बनने लगता है। चौथे में पूरा शरीर बन जाता है। पाँचवें महीने में हृदय और जीव पड़ता है। छठे और सातवें महीने में बालक का शरीर पुष्ट होता है। गर्भस्थ बालक पेट में उकरू बैठा हुआ, दोनों हाथों को पैरों से मिलाये रहता है। उसके दोनों घुटने छाती और पेट से लगे होते हैं और उसका माथा उन्हीं घुटनों के बीच में रहता है। यदि पुत्री रहती है, तब तो उसका मुख माँ की पीठ की ओर होता है और यदि पुत्र होता है तो उसका मुख माँ के पेट की ओर रहता है। गर्भस्थ बालक अपने हाथों की अँगुलियों से आँख, कान, नाक और मुख मूँदे रहता है।

इसका कारण यह है कि जिन सात झिल्लियों के भीतर गर्भाशय में बालक रहता है, उसमें एक प्रकार का ऐसा पानी होता है कि यदि वह बालक की आँख से छू जाय तो सूर, कान में चला जाय तो बहिरा, मुख में जाय तो गूँगा, पेट में जाय तो मुर्दा और मस्तक में जाय तो वह पागल हो जाता है। इसलिए दयालु परमात्मा ने अपने सब छिद्र मूँद रखने की शक्ति बालक को प्रदान की है।

भारतीय चिकित्सकों के आचार्य धन्वन्तरि जी का कहना है कि बालक के अंग-प्रत्यंग एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु अधिक सूक्ष्म होने के कारण लक्ष्य में आना कठिन है। समय पाकर वे यथाक्रम प्रकट होते हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो यही सिद्धान्त युक्ति-संगत भी मालूम होता है। बड़ी खोज के बाद अर्वाचीन विद्वानों ने भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की है। गर्भ-स्थित होने के समय से प्रायः नौ महीने में गर्भस्थ बालक की शारीरिक और मानसिक शक्तियों तथा अवयवो की रचना हो चुकती है। इन नौ महीनों को इस विषय के विद्वानों ने प्राकृतिक नियमानुसार दो भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में छः मास रक्खा है और दूसरे में तीन मास। पहले भाग में बच्चे के प्राय सारे शारीरिक अवयव बनते हैं, और दूसरे भाग में मानसिक शक्तियों का विकाश होता है। इस लिए पहले छः महीने में बच्चे की शारीरिक रचना में और पिछले तीन महीने में उसकी मानसिक शक्तियों में माता अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्त्तन कर सकती है।

दूसरे सप्ताह में गर्भ का आकार १।१२ इञ्च हो जाता है। तीसरे में उसका आकार बाजरे के दाने के बराबर हो जाता है। महीना समाप्त होते-होते सिर तथा पैर का आकार मालूम होने लगता है। लम्बाई भी उस समय ⅓ इञ्च तक हो जाती है। डेढ़ महीना बीत जाने पर उसका आकार ऐसा हो जाता है कि जिसे देखने पर यह मालूम किया जा सकता है कि यह मनुष्य जाति का बच्चा है। इस समय शरीर की अपेक्षा मस्तक बड़ा होता है। हाथ-पैर ठूठे से रहते हैं यानी उनमें हथेली और तलवे नहीं रहते। आँख, कान, नाक और मुख की जगह सिर्फ काले दाग मालूम होते हैं। दूसरे महीने के अन्त में प्रायः सारे अवयव (अङ्ग) साफ दिखायी पड़ने लगते हैं। लम्बाई एक इञ्च तक हो जाती है।

तीसरे महीने में आँख की पलकों का आकार बन जाता है बल्कि यों कहना चाहिए कि एक प्रकार से वे तैयार ही हो जाती हैं। इस समय मुख बन्द रहता है। इसी महीने में स्त्री-पुरुष में भेद बतलाने वाले अंगों की रचना होती है। इस समय तक लम्बाई प्रायः ३॥ इञ्च तक हो गयी रहती है। चौथे महीने में मस्तक और कलेजे की अपेक्षा दूसरे अवयव अधिक बढ़ते हैं। इस महीने से बच्चा कुछ-कुछ हिलना भी शुरू कर देता है। साढ़े चार महीना होते होते लम्बाई भी ५-६ इञ्च तक हो जाती है। पाँचवें महीने के अन्त तक पुट्ठे वगैरह ठीक-ठीक बन जाते हैं। इस समय तक शरीर की अपेक्षा सिर ही बड़ा रहता है और उस पर कोमल

सन्देह नहीं है। अस्तु; उत्तम सन्तानोत्पत्ति विषयक नियमों के साथ गर्भ की वृद्धि का क्रम जानना विशेष प्रयोजनीय है, इसलिए उसका संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया। अब आगे यह दिखलाया जायगा कि गर्भ की रक्षा किन-किन उपायों से हो सकती है, तथा कोई उपद्रव खड़ा होने पर किस महीने में कौनसा यत्न करना श्रेयस्कर है।

गर्भ-रक्षा के उपाय

गर्भिणी स्त्री को कभी दौड़ना, कूदना, या उछलना नहीं चाहिए। धमक कर सीढ़ी उतरना या असावधानी से सीढ़ी पर चढ़ना भी गर्भ के लिए हानिकारक है। इन कामों से गर्भ के गिर जाने या टेढ़ा हो जाने की सम्भावना रहती है, जिससे गर्भ तो नष्ट हो ही जाता है, साथ ही स्त्री को भी महान पीड़ा भोगनी पड़ती है। कभी-कभी तो इस पीड़ा से स्त्री मर भी जाती है। भयावह चीजों से गर्भिणी स्त्री को बचना चाहिए। उसे दूसरी स्त्री का प्रसव नहीं देखना चाहिए। गर्भिणी के लिए जल में तैरना, अधिक परिश्रम और झटके का काम करना, वृक्ष के नीचे अधिक ठहरना, अधिक सोना, अधिक जागना, दूर की वस्तु को नजर पर जोर देकर देखना, गर्म चीजें (जैसे लाल मिर्च आदि) खाना, उपवास-व्रत करना, अधिक भोजन करना, जबर्दस्ती भूख को

रोक रखना सूखी चीजें (जैसे भूना हुआ चना आदि) खाना, पुरुष के साथ सोना, मल-मूत्र के वेग को रोकना, मैलेपन से रहना अधिक जोर से बोलना, सिर में अधिक तेल लगाना, क्रोध-शोक करना आदि बड़ा ही हानिकारक है। इस लिए इन कामों से गर्भिणी स्त्री को सदा बचना चाहिए। गर्भिणी स्त्री को अधिक पौष्टिक भोजन भी नहीं करना चाहिए; क्योंकि पौष्टिक भोजन करने से बच्चा पैदा होते समय बड़ा कष्ट होता है।

दाल, भात, रोटी, तरकारी, दूध, थोड़ा घी आदि खाना गर्भवती के लिए विशेष लाभदायक है। मक्खन का सेवन करना भी बड़ा ही उपयोगी है। खासकर दूध का सेवन तो गर्भिणी को अवश्य ही करना चाहिये। हाँ दूध की शुद्धता पर ध्यान रखना जरूरी है। क्योंकि दूध खराब होने से लाभ के बदले हानि करेगा। बीमार पशु का दूध भूलकर भी न पीना चाहिए। थोड़ा-बहुत फलों का प्रतिदिन सेवन करना इस समय के लिए अमृत-तुल्य है। हमेशा मुख साफ रखना चाहिए; स्नान करते समय अंग-प्रत्यंग को अच्छी तरह से धोकर स्वच्छ कर देना उचित है। आजकल बहुधा स्त्रियाँ एक-दो लोटे पानी से ही नहा धो लेती हैं। यह बात बहुत बुरी है। केवल शरीर भिगो देने का नाम स्नान नहीं है। बल्कि स्नान का मतलब है, समूचे शरीर को मल-रहित करके शुद्ध कर डालना। प्रचुर जल से मल-मल कर स्नान करना प्रत्येक मनुष्य के लिए बड़ा ही लाभदायक है। इससे तन्दुरुस्ती

में जल्द कोई खराबी पैदा नहीं होती। गर्भवती के लिए प्रति दिन थोड़ा परिश्रम अवश्य करना चाहिए। गृहस्थी का कामकाज अपने अनुकूल देखकर करने से परिश्रम हो जाता है। मिहनत करने से स्त्री का शरीर फुर्तीला रहता है, भोजन ठीक से पच जाता है, नींद अच्छी तरह आती है तथा प्रसव यानी बच्चा पैदा होते समय कम कष्ट होता है।

गर्भवती स्त्री जो काम करती है, बच्चे का भी वही काम अपने-आप होता जाता है। गर्भिणी के सोने पर पेट का बच्चा भी निद्रित हो जाता है। उसके जागते ही बच्चा भी जाग पड़ता है। इसी प्रकार माता के साँस में खींची हुई वायु से बच्चा साँस लेता और माता के साँस छोड़ने पर वह भी साँस छोड़ देता है। कहने का तात्पर्य यह कि जो-कुछ माता करती है, उसका प्रभाव बच्चे पर किस प्रकार पड़ता है, इसका ज्ञान प्राप्त करके गर्भिणी को सर्वदा सावधान रहना चाहिए।

यदि गर्भिणी स्त्री प्रत्येक वस्तु की जानकारी रक्खे और हर काम में सावधानी रक्खे तो किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हो सकता। सन्तान भी उत्तम, दीर्घायु और हृष्ट-पुष्ट हो सकती है तथा उसका जीवन भी सुखमय बीत सकता है। मूर्खता-पूर्ण कार्य्य करने से ही गर्भस्राव और गर्भपात हो जाता है, मरी संतान पैदा होती है तथा बच्चे निर्बल, रोग-ग्रस्त और अल्पायु होते हैं।

पहले लिखा जा चुका है कि चार महीने के भीतर जो गर्भ

नष्ट हो जाता है, उसे तो गर्भस्राव कहते हैं और उसके बाद नष्ट होनेवाले गर्भ को गर्भपात। इनके लक्षण ये हैं.—

१—यदि गर्भ नष्ट होने को होता है तो अचानक शक्ति क्षीण हो जाती है, चित्त में व्याकुलता आ जाती है और बेहद शोक आती है।

२—जी टूटा सा जाता है। यह होता है कि कहाँ जाऊँ, क्या करूँ। पता नहीं चलता कि ऐसा क्यों हो रहा है।

३—खड़ो होने से सिर घूमने लगता है, चक्कर आ जाता है।

४—पेट के ऊपर और दोनों जघों में रह-रह कर वेदना होती है। मूत्र स्थान से तरबूज का सा पानी झरने लगता है।

५—यदि कमर, जघा और गुदा में अधिक पीड़ा हो, शूल हो और रुधिर या रुधिर की डली बाहर आने लगे तो समझना चाहिये कि गर्भ, गर्भाशय से अलग हो गया है।

यदि गर्भस्राव के लक्षण दिखलायी पड़ने लगें और पूरा निश्चय हो जाय कि गर्भस्राव होनेवाला है, तब उसके आरम्भ में ही यानी पीड़ा ही हो, रुधिर का निकलना शुरू न हुआ हो तो ये हितकर उपचार करने चाहियें।

—:o:—

हितकर उपचार

१—मुलहठी, देवदारु और दुद्धी इन चीजों के साथ दूध का सेवन करे।

२—शतावर और दुद्धी का काढ़ा पीवे।

इस प्रकार रुकावट हो जाने पर गो-दुग्ध में गूलर के पके फल का सेवन शुरू कर दे। गर्भवती को ठण्डे स्थान में सुला दे और ठण्डे पानी से प्रसव-द्वार को धो डाले। यदि रुधिर का निकलना शुरू हो गया हो तो दूध के साथ कसेरू या सिंघाड़ा अथवा कमल औटाकर ठण्डा हो जाने पर पिलावे। अथवा दो-तीन चावल भर अफीम का सत किसी सूखी वस्तु के साथ खिला देना चाहिए।

यदि पहले ही पहल गर्भाधान हुआ रहता है तो गर्भस्राव या गर्भपात छः-सात घण्टों में ही हो जाता है, देर नहीं लगती। किन्तु यदि स्त्री दूसरी या तीसरी बार गर्भ धारण किये रहती है तो दो-तीन दिन लग जाते हैं। जिस स्त्री का गर्भ नष्ट हो जाय, उसे कम से कम पांच-छः महीने तक पति के पास नहीं जाना चाहिए। क्योंकि इसके भीतर गर्भ रह जाने से उसके भी नष्ट हो जाने की आशंका रहती है। जिस स्त्री का गर्भ बराबर नष्ट होता ही जाय, उसे गर्भ की रक्षा के लिए गर्भिणी होने पर खूब साव-धानी से रहकर इस प्रकार दवा का सेवन करना चाहिए:—

पहले महीने में मुलहठी, दुद्धी और देवदारु की पोटली बाँध-

कर दूध में डाल दे। जब दूध पीने के लायक पक जाय, तब उसे आग के ऊपर से उतार ले और पोटली को निकाल कर फेंक दे। बाद उस दूध में मीठा डालकर पिया करे।

दूसरे महीने में करजवा, काला तिल, मँजीठ और शतावर की पोटली डालकर ऊपर की रीति से दूध में पकाकर पिये।

तीसरे महीने में दुद्धी, कमलगट्टा, सरिवन और सांठी के चावल की खीर खाया करे।

चौथे महीने में कटेरी, कम्भारी, दूधवाले वृक्ष की कोंपल दूध में औटाकर पिये तथा घी या दही से भात खावे।

पांचवें महीने में दूध-भात खाना बड़ा ही उपयोगी है।

छठे महीने में पृष्टपर्णी, सहिजन, गोखरू और गिलोय को दूध में औटाकर उसे पिये। घी मिलाकर भात खाय। दूध की लस्सी का सेवन करे। गोखरू को घी में पकाकर खाय।

सातवें महीने में सिंघाड़ा, मुनक्का, केसर, मुलहठी और चीनी को दूध में औटाकर पिये।

आठवें महीने में कैथ, कटेरी, बेल, परवल और ईख, इन सबकी जड़ को दूध में पकाकर पीना चाहिए। या दूध में रेंड़ी का तेल और मीठा मिलाकर कभी-कभी पी लेना उचित है।

नवें महीने मुलहठी और देवदारु, दूध में पकाकर सेवन करना हितकारी है।

दसवें महीने में सोंठ और दुद्धी दूध में पकाकर पीना चाहिए।

मुलहठी, सालवृक्ष के बीज, देवदारु, नोनिया साग, काले तिल, राल, शतावर, पीपल, कमल की जड़ जवासा, गोरीसर, वायबुरई, दोनों कटेरी, सिंघाड़ा, कसेरू, दाख और मिश्री तीन-तीन माशे ले और सात महीने तक प्रतिमास में सात-सात दिन सेवन करे तो कभी भी गर्भ नष्ट न हो। यदि गर्भिणी की कोष्ठ-शुद्धि न रहती हो तो थोड़ा सा शुद्ध किया हुआ रेंड़ी का तेल (डाक्टरी दवाखानों में मिलता है) चीनी मिले हुए दूध में मिलाकर कभी-कभी पी लेना चाहिए। यह विरेचन बड़ा ही लाभदायक है, इसी से गर्भिणी स्त्री के लिए भी लिखा जा रहा है। इसके सिवा दूसरी विरेचन की दवा कभी नहीं खानी चाहिये। क्योंकि गर्भिणी स्त्री के लिए वमन और विरेचन निषेध है। किन्तु ऊपर की दवा लेने में कोई हानि नहीं है। इस लिए इसका सेवन करके कोष्ठ-शुद्धि करने में गर्भिणी स्त्री को किसी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

अब इसके बाद हम यह बतलाना चाहते हैं कि यदि गर्भावस्था में अन्यान्य उपद्रव खड़े हों तो उनके लिए क्या करना उचित है।

पहला महीना

यदि पहले महीने में किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत हो तो नीलोफर, कमल-ककड़ी, सिंघाड़ा और कसेरू को ठण्ढे पानी में पीसकर गाय के दूध में पीना चाहिए। अथवा, मँजीठ, लाल चन्दन

चित्र नम्बर ८

चौथा महीना

कूट, और तगर को बराबर-बराबर लेकर दूध में पीसकर दूध के साथ पीना चाहिये।

दूसरा महीना

तगर, केसर, वेलगिरि और कपूर को समान मात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीसे और उसी के दूध में छानकर पिये। या सालम मिश्री, नीलोफर, कसेरू, अदरख, सम मात्रा में लेकर जल में पीस गाय के दूध में छानकर पीना चाहिए। अथवा सिंघाड़ा कसेरू, सफेद जीरा, वेलपत्र और छुहाड़ा सम मात्रा में ले, पानी में पीसकर दूध में पिये।

तीसरा महीना

पद्माख, सफेद चन्दन, खस, तगर को सम मात्रा में पानी से पीसे और बकरी के दूध में छानकर पी ले। अथवा खस, सफेद चन्दन, नागरमोथा, पद्माख, कमलककड़ी को पानी में पीसकर गाय के दूध के साथ पीना चाहिए।

चौथा महीना

सिंघाड़ा, केले का पत्ता, दाख, अनार की कली और केले के कन्द को पानी में पीसकर बकरी के दूध में पिए। या खस, कमल ककड़ी और केले की जड़ को पानी में पीस बकरी के दूध में पीने से कष्ट दूर हो जाता है।

पाँचवाँ महीना

नीलोफर, कमलककड़ी, कमलगट्टा और नागकेशर को बकरी के दूध में पीस-छान कर पीना चाहिये। या नील कमल की जड़, काकमाची, कमलककड़ी को पानी में पीस कर दूध में पिये।

छठा महीना

बच, इलायची, मुनक्का, नीलोफर और नागकेशर को दूध में पीस-छान कर पीना चाहिए। या पीपल, पीपलामूल, कमल का फूल और कमल की केशर को पानी में पीस, बकरी के दूध में पीना उचित और लाभदायक है।

सातवाँ महीना

सातवें महीने में यदि किसी तरह की पीड़ा हो तो कैथ की गिरी, मूँगा की शाख, धान की खील और इन्द्र जौ को सममात्रा में लेकर दूध में पीस-छानकर पीना चाहिए। अथवा कैथ वृक्ष के फल की गिरी, सालम मिश्री, धान की खील और इन्द्रजौ को बराबर-बराबर लेकर जल में पीस, गाय के दूध में छानकर पीना चाहिए। या पीपल की जड़, वड़ की जड़ और सोंठी की जड़ तथा लाल चन्दन को सममात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीसकर उसी के दूध में पीना भी विशेष लाभ पहुँचाता है।

आठवाँ महीना

पद्माख, गजपीपल, कमल का फूल, कमलगट्टे की गिरी

और धनियाँ इन चीजों को सममात्रा में लेकर पानी में पीस डालना चाहिए। बाद उसे गाय के दूध में छानकर पीने से सब तरह के उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

नवाँ महीना

रेंड की जड़, काकोली, पलासपापड़ा, इनको सममात्रा में ले कूट-छान कर जल के साथ पीने से तत्क्षण आराम हो जाता है। या सोंठ, ढाक के पत्ते, इलायची, वायविडंग, सफेद जीरा और गजपीपल, इनको बराबर-बराबर लेकर बकरी के दूध में पीस-छान कर पीने से भी कष्ट दूर हो जाता है और गर्भ नष्ट नहीं होता।

गर्भिणी की इच्छा-पूर्ति

गर्भिणी स्त्री की कभी-कभी कुछ ऐसी चीज खाने की इच्छा होती है, जिसे वह सुगमता से नहीं पाती। ऐसी दशा में उसकी जिस चीज पर इच्छा हो, वह चीज उसे अवश्य खिला देनी चाहिए। कितनी ही स्त्रियाँ मूर्खता के कारण अपनी इच्छा को प्रकट नहीं करतीं और लज्जा के कारण उसे दबा बैठती हैं, किन्तु यह बहुत बुरी बात है। इच्छा को रोकने से गर्भस्थ बालक पर बड़ा ही बुरा असर पड़ता है। ऐसी स्त्रियों की सन्तान बहुत असन्तोषी होती है। इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि गर्भिणी स्त्री को दो हृदय होता है, और जो इच्छा उत्पन्न होती है, वह एक प्रकार से उसके भीतर की माँग होती है। इसी से गर्भिणी स्त्री को दौहृदिनी कहा गया है।

प्रसवकाल

बच्चा पैदा होने के समय को प्रसवकाल कहते हैं। जिस घर में बच्चा पैदा होता है, उसे 'प्रसूति-गृह' या ग्रामीण भाषा में सौर कहते हैं और जब बच्चा पैदा हो जाता है, तब उसी गर्भिणी स्त्री का नाम प्रसूता हो जाता है। इस प्रकरण में प्रसवकाल के संबंध में कुछ लिखना आवश्यक है। क्योंकि इस समय स्त्रियों का नया जन्म होता है। जरा भी गलती करने से इस समय अनेक तरह के रोग जैसे प्रसूत का दु:ख, योनि का बाहर निकल कर बढ़ जाना आदि—हो जाते हैं। इस लिए जब देखे कि गर्भ के दिन पूरे हो गये, तब किसी चतुर दाई को पहले ही से बुलाकर घर में रख ले। यदि कोई दाई न मिले तो घर की स्त्रियों को ही खूब सावधानी से इस काम के करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

पहले कहा जा चुका है कि गर्भ में बालक प्राय: नौ महीने के लगभग रहता है। कभी नौ महीने में कुछ दिन पहले ही वह पैदा हो जाता है और कभी दस-पाँच दिन बाद। जब प्रसवकाल निकट आ जाय, तब गर्भिणी का प्रसूतिका-गृह निश्चय कर लेना चाहिए। वह घर पवनीक यानी हवादार हो तथा दुर्गन्ध-रहित हो। प्रकाश भी उस घर में अच्छी तरह होना जरूरी है। उस कमरे में सील भी न होनी चाहिए। आजकल सूतिका-गृह बहुधा ऐसा चुना जाता है, जो घर मकान भर में सब कमरों से रद्दी और

खराब होता है। किन्तु ऐसा करना बहुत ही बुरा है। वाग्भट्टजी ने लिखा है.—

प्राक्चैव नवमात्मास्तात् सूतिका गृहमाश्रयेत्।
दर्शै प्रशस्ते सम्भारै सम्पन्नं साधकेऽहत्ति ॥

अर्थात्—नवाँ महीना शुरू होते ही शुभ दिन देखकर अच्छे स्थान में बने हुए स्थान को सूविका गृह चुनना चाहिये। उसमें सारी आवश्यकीय वस्तुएँ मौजूद रहना जरूरी है। ऐसे ही मकान में गर्भिणी स्त्री को प्रसव करना चाहिये।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि सूतिका-गृह कैसा होना चहिए। ऊपर कहा जा चुका है कि इस घर का साफ-सुथरा और हवादार रहना बहुत जरूरी है। इसके सिवा यह घर कम-से-कम ८-९ हाथ लम्बा और ५-७ हाथ चौड़ा होना चाहिए। इस घर में बहुत तेज हवा आनेकी आवश्यकता तो नहीं है, पर मन्द-मन्द हवा अवश्य आनी चाहिये। घर में ठण्ढ बिलकुल न होनी चाहिए। यदि जाड़े का दिन हो तो इस घर में बिना धुएँ की आग हरवक्त दहकती रहनी चाहिए। सुबह शाम कमरे के दरवाजों को बन्द कर देना उचित है; इससे कमरे में शीत का प्रवेश नहीं हो पाता। बाकी समय में जाड़े का दिन होते हुए भी दरवाजों को खुला रक्खे। गर्मी के दिनों में दरवाजों को बराबर खुला रखना उचित है। वर्षा में यदि घटा घिरी हुई हो तो इन्हें बन्द करके थोड़ा सा खुला रहने दे। सौर में सर्दी लगने से मसान आदि रोग हो जाते

हैं। घर में दीपक ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जो बच्चे के सन्मुख न हो। सिरहाने की ओर रखना सबसे उत्तम है। अच्छा हो यदि उस घर में मिट्टी के तेल का दीपक न जलाया जाय। कारण यह कि इस तेल में धुआँ होता है और वह धुआँ जीवन के लिए हानि-कारक है।

सौर के घर में बहुत सी स्त्रियाँ न रहने पावें, स्त्री के पति को तो उस समय वहाँ रहना ही नहीं चाहिए। घर में ऐसी स्त्रियाँ उस समय रहें, जो प्रसूता की प्रेमपात्री हों और प्रिय वचन बोलने वाली हों—साथ ही इस विषय की जानकार हों। उस समय भय-युक्त बात भूलकर भी मुख से नहीं निकालना चाहिए, अधिक-से-अधिक चार स्त्रियाँ तक प्रसव के समय सूतिका-गृह में रह सकती हैं। क्योंकि इससे अधिक स्त्रियों के रहने से एक शोर-गुल होता है दूसरे घर की वायु भी खराब हो जाती है।

इस समय वेदना दो तरह की होती है; एक तो प्रसव की वेदना और दूसरी किसी अन्य कारण से। प्रसव वेदना के चिह्न ये हैं—कोख में शिथिलता आ जाती है, हृदय बन्धन-रहित जान पड़ने लगता है, दोनों जाघों में पीड़ा होने लगती है, कमर या पीठ के चारो ओर दर्द होती है, प्रसव-द्वार से कफ के समान पानी निकलने लगता है तथा बार-बार मूत्र त्याग करने की इच्छा होती है, पर मूत्र उतरता नहीं। इसके अतिरिक्त प्रसव-वेदना रुक-रुक कर होती है। प्रसव-वेदना पहले धीरे-धीरे होती है फिर कुछ

समय के लिए रुक जाती है। बाद हलकी सी पीड़ा होकर २५-३० मिनट तक रहती है। इसके बाद अधिक देर तक ठहरने वाली तीव्र वेदना आरम्भ हो जाती है।

यदि गर्भिणी स्त्री खाने-पीने में व्यतिक्रम न करे, कोष्ठ शुद्धि पर हमेशा ध्यान रक्खे और अपनी शक्ति के अनुसार बराबर परिश्रम करती जाय—आरामतलब न हो, तो उसे अधिक प्रसव वेदना नहीं हो सकती। यही कारण है कि मजदूरी का पेशा करने वाली स्त्रियों को प्रसव की पीड़ा बहुत ही कम होती है। अकसर देखने में आया है कि गर्भिणी मजदुरिन पूरा गर्भ हो जाने पर भी काम किया करती है और जब उसे प्रसव के चिन्ह दिखलायी पड़ते हैं, तब वह काम छोड़कर घर चली जाती है और दो-तीन घण्टे में ही बच्चा पैदा हो जाता है। प्रसव-वेदना एक रोग है। जिन स्त्रियों में यह रोग नहीं होता, उन्हें प्रसव-वेदना नहीं के बरा-होती है। चंगड़ों की स्त्रियाँ चली जाती हैं और मार्ग में ही प्रसव कर लेती हैं; बाद बालक को लेकर फिर अपनी राह लेती हैं। उन्हें इस काम के लिए दस मिनट से अधिक नहीं ठहरना पड़ता। इसी प्रकार अफ्रिका की जंगली जातियाँ, जो हमेशा नगी रहा करती हैं और जिन्हें असभ्य कहा जाता है, बिना किसी विशेष कष्ट के बड़ी आसानी से प्रसव कर लेती हैं, इसका कारण विद्वानों ने यही बतलाया है कि वे काम-काज किया करती हैं और गर्भाधान हो जाने बाद मैथुन एक बार भी नहीं करतीं।

प्रसव वेदना के समय मल-मूत्र के वेग को कभी भी न रोकना चाहिए। यदि इनकी रुकावट हो गयी हो तो फौरन यत्न करना उचित है। यदि इस समय भूख लगे तो गाय का गरम दूध थोड़ा कुनकुना रहने पर पिलाना चाहिए; प्यास लगने पर ठण्डा पानी देने में कोई हानि नहीं है। कुछ लोगों का कहना है कि प्रसव का समय निकट आ जाने पर गर्भिणी को मल तो त्याग आने दे, पर पेशाब लगने पर मूत्र-त्याग न करावे—क्योंकि मूत्र को रोकने से प्रसव में बड़ी सहायता मिलती है। किन्तु हमारे खयाल से मूत्र का वेग रोकना भी ठीक नहीं है।

जब लक्षणों से यह निश्चय हो जाय कि वेदना प्रसव की ही है, तब उसको खूब कसी हुई लम्बी-चौड़ी चारपाई पर सुला देना चाहिए। यदि तख्ता हो तो और भी अच्छा। गर्भिणी को भूमि पर कभी न लेटना चाहिए; क्योंकि धूल में हजारों रोगोत्पादक कीटाणु होते हैं। वे कीटाणु शिशु के ऊपर चढ़ जाते हैं और उसे रोगी बना देते हैं। प्रसव के समय प्रायः स्त्रियों के लिए फटे, पुराने और मैले चिथड़े दिये जाते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। स्वच्छता की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। ऐसे कपड़ों से प्रसविणी और नवजात शिशु के बीमार होने की पूरी सम्भावना रहती है; क्योंकि यह अवस्था बड़ी ही नाजुक होती है। कभी-कभी वस्त्रों की गन्दगी के कारण भी बच्चों का दम घुटने लगता है और वे मर जाते हैं।

यदि सूतिका-गृह में रहने वाली चारपाई गरम जल से धोकर सुखा लिया जाय और बाद सूतिका घर में बिछावे तो बड़ा ही अच्छा हो। जिस प्रकार उत्तम चारपाई की जरूरत है उसी प्रकार सूतिका-गृह में उत्तम, स्वच्छ, कोमल और सुखद बिछौने की भी जरूरत है। सूतिका-गृह में एक भी फालतू चीज न रहने दे। प्रसूता की चारपाई दीवार के पास खिड़की के सामने बिछानी चाहिये। उस घर में हर वक्त गरम पानी तयार रहना चाहिए। दाई को प्रसव के वक्त इस पानी से हाथ धोकर प्रसूता की सुश्रूषा करनी चाहिये। जो दाई काम करने के लिए नियत की जाय, उसे साफ वस्त्र पहना देना चाहिए और उसकी अँगुलियों के नाखून भी कटवा दे। क्योंकि नाखून से गर्भस्थान में चोट लग जाने का भय रहता है।

जब प्रसवकाल बिलकुल निकट आ जाय, तब खूब साव-धानी से यह देखना चाहिए कि बच्चा पेट में किस प्रकार से है। सिर पहले है या पैर अथवा आड़ा तो नहीं है। पहचानने की रीति यह है कि प्रायः सभी बालकों का सिर नीचे की ओर होता है और सिर के बल ही वे पैदा होते हैं। जब बालक का सिर नीचे की ओर होता है, तब वह बायीं ओर से दाहिनी ओर को घूमता है और स्त्री को बायाँ ओर भारी मालूम होता है किन्तु जिस स्त्री के दाहिनी ओर भारी रहे और बालक दाहिनी ओर से बायीं ओर घूमे तब समझना चाहिए कि बालक के पैर नीचे की

ओर हैं और वह पैर के बल उत्पन्न होगा। यदि दोनों ओर भारी रहे और घूमे न, तो समझ ले कि बालक आड़े पड़ा हुआ है और हाथ के बल उत्पन्न होगा। इनमें स्त्री को बहुत कष्ट होता है। यहाँ तक कि सौ में पंचानवे स्त्रियाँ मर जाती हैं।

बहुधा दाइयाँ वेदना के समय गर्भिणी से काँखने के लिए कहती हैं। इसमें उनका उद्देश्य यह होता है कि इस प्रकार जोर लगाने से बच्चा जल्द बाहर निकल आवेगा; किन्तु ऐसा करना अत्यन्त घातक है। इस समय यदि गर्भिणी को रुचे तो थोड़ा घी डाला हुआ दूध पिलाना चाहिए। हाँ यदि प्रसव हो रहा हो, तब तो थोड़ा जोर लगाना ठीक होता है, पर उस समय तो अधिकांश स्त्रियों को चेत ही नहीं रहता। प्रसव के समय इतनी वेदना होने का कारण यह है कि गर्भाशय का मांस धीरे धीरे सिकुड़ने लगता है और प्रसव द्वार चौड़ा होने लगता है। गर्भाशय के सिकुड़ने की लहरें उठती हैं, इन्हीं लहरों के कारण स्त्री को इतना कष्ट होता है। गर्भाशय के भीतर बच्चा और कुछ तरल पदार्थ होते हैं।

इस समय बहुत सी स्त्रियाँ अपना दिल एकदम छोटा कर लेती हैं। वे यह समझती हैं कि अब जान नहीं बचेगी। इसी से प्रसवकाल में पास में रहने वाली स्त्रियों का बुद्धिमती होना आवश्यक बतलाया गया है। क्योंकि चतुर स्त्रियाँ गर्भिणी को सान्त्वना दे सकती हैं और अपनी बुद्धि-चातुरी से उसके दिल को बहला सकती हैं। इस समय गर्भिणीमें हिम्मत पैदा करना उसकी

जीवन-रक्षा के लिये बहुत ही आवश्यक होता है। छोटा दिल कर लेने से कभी-कभी मनुष्य निष्प्राण हो जाता है। विचारों का प्रभाव मनुष्य पर बड़ा ही गहरा पड़ता है। इस लिए पास में रहनेवाली स्त्रियों को खूब बुद्धिमानी से गर्भिणी को उत्साहित रखना उचित है। इस समय बहुत सी दाइयाँ भीतर हाथ डालकर देखती हैं, किन्तु यह बहुत ही बुरा काम है। इससे प्रसूता को बहुत कष्ट होता है। गर्भाशय के भीतर बालक एक झिल्ली से मढ़ा रहता है। बच्चे के बाहर निकलते-निकलते यह झिल्ली फट जाती है। झिल्ली के फटने का शब्द भी होता है। इसके फटते ही गर्भोदक बहने लगता है, इससे बच्चे के निकलने के मार्ग में चिकनाहट पैदा हो जाती है। कभी-कभी यह झिल्ली नहीं भी फटती और बच्चा झिल्ली सहित बाहर निकल आता है। इस समय होशियारी की जरूरत है। चतुर दाई को उचित है कि खूब सावधानी से उस झिल्ली को चाकू से फाड़ कर बालक को निकाल ले। इस काम में यदि देर की जाती है तो बच्चा मर जाता है। क्योंकि गर्भ में बच्चे के फेफड़े साँस लेने अथवा छोड़ने का काम नहीं करते; किन्तु ज्योंही वह बाहर निकलता है, त्योंही उसकी श्वास-प्रश्वास क्रिया जारी हो जाती है। झिल्ली, उसके इस काम में रुकावट डालती है, इस लिए उसके हटाने में विलम्ब होने से बच्चा मर जाता है। इस काम में सावधानी रखने के लिए इस वास्ते कहा गया है कि कहीं झिल्ली फाड़ने के समय चाकू बच्चे के शरीर में न लग जाय।

कभी कभी बच्चे पेट में ही मर जाते हैं। पेट में बच्चे के मर जाने की पहचान यह है कि मरा हुआ बच्चा पेट में घूमता नहीं है। पेट में मांस का लोथा सा हो आता है। स्त्री के स्तनों का दूध सूख जाता है और उसमें ढिलाई आ जाती है। यदि बच्चा मर जाय तो फौरन किसी अच्छे डाक्टर से उसे निकलवाने का प्रबन्ध करना चाहिए। देर करने से स्त्री की जान खतरे में पड़ जाती है।

प्रसवकाल की साधारणतया तीन अवस्थायें होती हैं। पहली अवस्था में तो बालक धीरे-धीरे और रुक-रुक कर प्रसव द्वार की ओर आता है और दूसरी अवस्था में वह पैदा होने लगता है। तीसरी अवस्था वह है, जो बालक उत्पन्न होने के पीछे प्रसूता के पेट में से पानी की तरह कोई पदार्थ निकलता रहता है। पहली दशा में प्रसूत को खड़ी रखे या सँभाल कर टहलाती रहे। परन्तु उतना टहलाना उचित है, जितने से उसे थकावट न मालूम हो। यदि थकावट आने लगे तो बैठा दे और यदि नींद आती हो, तो बेधड़क सो जाने दे। क्योंकि नींद उचटने के बाद जब वेदना शुरू होती है तब बहुत जल्द प्रसव हो जाता है। प्रसूता को चित्त या पट न लिटाकर बायीं करवट से या जिस ओर से लेटने में उसे आराम मिले उसी ओर लिटाना अधिक उत्तम है। दोनों घुटनों के बीच में कोमल तकिया रख देना चाहिए, ताकि दोनों जाँघ अलग-अलग रह सकें। अब इस अवस्था में प्राणवायु को भीतर रोक कर जोर लगाना प्रसूता के

लिए लाभदायक है, इस समय भी जोर उतना ही लगाना चाहिए जितना स्वाभाविक रीति से मल त्याग करने में—अधिक नहीं। किन्तु मूर्ख दाइयाँ पहली ही अवस्था में जोर लगवा-लगवा कर प्रसूता को थका डालती हैं, जिससे बहुत हानि होती है। पहली अवस्था में सिर्फ टहलाने के और कोई काम नहीं लेना चाहिए। टहलाने से वेदना तीव्र हो जाती है, जिससे प्रसव होने में शीघ्रता होती है। यदि वेदना मन्द पड़ जाय तो स्त्री को थोड़ा सा गरम दूध पिलाना चाहिए। इससे जरायु का मुख शीघ्र खुल जाता है। कोई-कोई स्त्री को दो चार दिन तक प्रसव-वेदना सहनी पड़ती है। उस समय घर की स्त्रियाँ उसे भोजन नहीं देतीं; किन्तु ऐसा करना उचित नहीं। गरम दूध या साबूदाना अथवा मखाने की खीर आदि हलकी चीजें अवश्य खाने को देनी चाहिएँ।

प्रसव होते समय एक चतुर स्त्री को प्रसविणी के पीछे बैठ जाना चाहिए। उसे अपनी प्रसूता की पीठ पर धीरे-धीरे हाथ फेरना चाहिए। जिस स्त्री को पहलौठी का बालक होता हो, उसकी तो बड़ी ही सावधानी होनी चाहिए। इससे जननी को शान्ति मिलती है। जबतक बच्चा पैदा न हो जाय, तबतक उस स्त्री के पीछे से नहीं हटना चाहिए और हलका हाथ भी फेरते जाना उचित है। जब बालक का सिर बाहर निकल आवे तब उसकी गर्दन के चारो ओर हाथ फेरकर यह देख लेना जरूरी है कि नाल गर्दन में तो नहीं लिपटा है। पैदा होते ही यदि यह नाल शरीर से न निकाला

जाय तो बच्चे के मर जाने का भय रहता है। बालक का मस्तक निकल आने पर बहुत सी मूर्ख दाइयाँ बच्चे का मस्तक पकड़ कर खींचती हैं। किन्तु ऐसा कभी न करना चाहिए। मस्तक के साथ एक नस होती है, उसके खिंच आने से बालक की मृत्यु हो जाने का भय रहता है। इस लिए दाई को चाहिए कि स्त्री के पेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरे। ऐसा करने से फिर प्रसव-वेदना शुरू हो जाती है और बच्चे का शेष अंग भी बाहर निकल आता है, खींचने की जरूरत नहीं पड़ती।

ऊपर जिस नाल की चर्चा की गयी है, यदि वह नाल बच्चे की गर्दन में लिपटा हुआ हो तो धीरे-धीरे हलके हाथों से उसे खोलकर सिर के ऊपर से उतार कर भीतर कर देना चाहिए। यदि नाल में उलझन अधिक हो तो उसमें समय लगाना ठीक नहीं है। यदि सिर निकल आने के बाद प्रसव की वेदना पेट पर हाथ फेरने से भी न पैदा हो, तो समझना चाहिए कि अभी बच्चे का समूचा शरीर निकलने में कुछ देर लगेगी। इस लिए ऐसे समय में चतुर दाई बालक को खींच कर निकाल ले, यही अच्छा है। क्योंकि देर लगने से भी बच्चे की मृत्यु की आशंका रहती है। परन्तु इतने पर भी सिर पकड़ कर दाई कभी न खींचने पावे। उसे चाहिए कि वह अपने दोनों हाथों की अँगुलियाँ भीतर डालकर बालक के बगलों में अँकुश की तरह अड़ाकर खींचे। खींचते समय पीछे बैठी हुई स्त्री को चाहिए कि वह प्रसूता का पेट दबाये रहे।

पेट के दवाये रहने से रक्त नहीं निकलने पाता। रक्त निकलने से बालक को हानि पहुँचती है। क्योंकि वह रक्त बालक के कान, नाक और मुख में भर जाता है।

किसी-किसी स्त्री को बालक पैदा होते समय बड़ा कष्ट होता है, जल्द प्रसव होता ही नहीं। कई दिनों तक असह्य वेदना होती है। ऐसी दशा में नीचे लिखे यत्नों से काम लेना चाहिए। किन्तु यत्न करने के पहले इस बात को अच्छी तरह से जान लेना चाहिए कि प्रसव-वेदना ही है या और कुछ। जब यह निश्चय हो जाय कि प्रसव-वेदना ही है, तब नीचे लिखे उपायों को काम में लाकर गर्भिणी के कष्टों को दूर करना चाहिए:—

प्रासविक उपचार

१—करंजुवा के पत्तों और बीजों का कल्क बनाकर या बकरी के दूध में तिल के तेल को पकाकर प्रसव-स्थान में मलने से बच्चा पैदा हो जाता है, विशेष कष्ट नहीं होता।

२—भँड़भाँड़ की जड़ कपड़े में लपेट कर प्रसविणी की कमर में बाँधे, यह दवा परीक्षित है, शर्तिया प्रसव हो जाता है।

३—रेंड़ी का तेल पेड़ू पर धीरे-मलने से बहुत जल्द प्रसव हो जाता है।

४—सेहुँड़ का दूध नख और टूँड़ी पर मले।

५—सवा तोला अमलतास का छिलका पानी में औटाकर

ऊपर से चीनी मिलाकर पिला देने से भी प्रसव जल्द हो जाता है।

६—यदि चुम्बक पत्थर को प्रसूता अपने हाथ में लिए रहे, तब भी प्रसव जल्द हो जाता है।

७—फालसे की जड़ अथवा शालपर्णी की जड़ को पानी में पीसकर नाभी, वस्ति और योनि पर लेप करने से भी लाभ होता है।

८—अपामार्ग (इसे ग्रामीण भाषा में चिरचिटा या चिचिड़ी कहते हैं) की जड़ महीन पीसकर नाभि के नीचे योनि और जंघों पर लेप कर देने से भी प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है।

९—अपामार्ग बड़ी ही तीक्ष्ण वस्तु है। यदि बहुत आवश्यकता आ पड़े और बालक किसी तरह भी बाहर न निकलता हो, तब इसकी जड़ (ताजी) जिसकी लम्बाई तीन-चार अँगुल हो, बड़ी सावधानी से प्रसूता की योनि में रख दे। साधारण दशा में इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए, नहीं तो गर्भाशय तक बाहर निकल पड़ेगा।

१०—मनुष्य के बाल जलाकर गुलाबजल में मिला दे, बाद उसे स्त्री के तलवे पर मलने से भी जल्द प्रसव हो जाता है।

११—प्रसूता अपने लट को मुख में डाल ले। इससे भी शीघ्र प्रसव हो जाता है।

१२—'अपीका' नामक अँग्रेजी दवा एक-एक रत्ती तीन बार देने से सहज ही में प्रसव हो जाता है।

१३—बच को उबाल कर पीने से भी बहुत ही लाभ होता है।

१४—गर्भिणी के शरीर में अच्छी तरह से तेल लगाकर गरम जल से स्नान कराना भी हितकर है।

१५—थोड़ी सी मूँग की खिचड़ी गरम-गरम खिलाना या गरम दुध पिलाना भी फायदेमन्द है।

१६—साँप की केंचुर की धूनी गुह्य-स्थान में देने से भी प्रसव होने में बड़ी सहायता मिलती है।

१७—छींक आने के लिए कोई दवा देने से भी बच्चा शीघ्र बाहर निकल आता है।

१८—पांच तोले गुड़ में एक तोला अजवाइन का काढ़ा बना-कर कुनकुना पिलाने से भी प्रसव हो जाता है।

१९—रेंडी की गिरी, पीपल और बच को तिल्ली के तेल में पीसकर नाभि के ऊपर लेप करने से कितना ही कष्ट क्यों न हो फौरन दूर हो जाता है और सुख से सन्तान पैदा होती है।

२०—मोर-शिखा की जड़, विजयसार, सहिजन की जड़, पाल, कटाली और खरेंटी इन चीजों को बराबर-बराबर लेकर कांजी के जल में पीस, नाभि में लेप करने से शीघ्र प्रसव हो जाता है। या शालपर्णी की जड़ को चावल के पानी में पीस कर नाभि भग और वस्ति में लेप करने से सुखसे बालक उत्पन्न हो जाता है।

२१—चिरमिटी की जड़ को दस टुकड़े कर डाले। बाद सात तार के लाल धागे में उनको अलग-अलग बाँधकर कष्टवाली स्त्री

की कमर में बाँध देने से सन्तान तत्त्तण उत्पन्न हो जाती है।

२२—गाजर के बीज, सौंफ, सोया, मेथी के दाने, बटवृक्ष की जड़, बनपशा और मुलहठी प्रत्येक तीन-तीन माशे लेकर क्वाथ बनावे। फिर उसे छानकर गर्भिणी को पिलाने से सुख से प्रसव हो जाता है।

साधारणतः जिस प्रकार प्रसव होता है और प्रसवकाल में जिन बातों का जानना आवश्यक है, उनका वर्णन यहाँ तक किया जा चुका; किन्तु कभी-कभी ऐसी विकट समस्या उपस्थित हो जाती है कि बालक और प्रसुता दोनों की जान जाने का भय रहता है। जैसे, पहले सिर न निकल कर बच्चे का नितम्ब बाहर निकल आता है। यह भयङ्करता का चिन्ह है। इस समय चतुर दाई ही काम कर सकती है। कभी-कभी बच्चा अधिक मोटा होने अथवा मर जाने के कारण बाहर नहीं निकलता। बच्चे का गर्भ में मर जाना बड़ा ही भयङ्कर है। ऐसी दशा में फौरन डाक्टर को बुलाना चाहिये। कभी-कभी आँवल पहले ही निकल आती है। यह भी भयंकर बात है। इसको बच्चा पैदा होने के बाद निकलना चाहिए किन्तु कभी-कभी यह गर्भाशय के मुख के पास लग जाती है। इसीसे पहले यही निकल पड़ती है। जब रज पाँचवें अथवा छठे महीने में प्रवाहित हो, तब समझना चाहिये कि आँवल गर्भाशय के पास ही है। आँवल गर्भाशय के मुख के पास है या नहीं, यह जानने के लिए छठे महीने जब रुधिर बहे और इसी तरह बिना

किसी कारण से कभी-कभी बहने लगे, तब अँगुली डाल कर यह देखना चाहिए कि कोई मुलायम चमड़े की तरह चीज तो नहीं है। यदि ऐसी चीज का अँगुली से स्पर्श हो, तो समझ लेना चाहिए कि आँवल गर्भाशय के मुख के पास ही है। इसका निश्चय हो जाने पर प्रसव के समय दाई को खूब सावधानी से काम करना चाहिए। प्रसव-पीड़ा शुरू होने पर चतुर दाई को चाहिए कि वह अपना हाथ गरम पानी से खूब साफ करके भीतर डालकर आँवल को रोक दे और बच्चे को पहले बाहर निकल आने दे।

कभी-कभी गर्भ में एक से अधिक बच्चे भी रहते हैं। इसमें भी दाई को खूब सावधानी से काम लेना चाहिए। क्योंकि इसमें भी प्रसूता को बहुत कष्ट होता है।

नवजात शिशु

बालक उत्पन्न हो चुकने पर दो बातों की ओर ध्यान देना चाहिए। एक तो उसके रोने पर और दूसरे मल-त्याग पर। बच्चा पैदा होते ही रोने लगता है। यह उसकी स्वस्थ्यता की खास पहचान है। रोने से यह सूचित होता है कि उसके फेफड़े हवा से भर गये और श्वासप्रच्छ्वास क्रिया आरम्भ हो गयी। यदि बालक न रोवे तो समझना चाहिए कि अभी वह हाँफ रहा है।

बच्चे के पैदा होते ही सबसे पहले उसके गले के नाल को देखना उचित है। बहुधा बच्चों के गले में नाल (नार) लिपटा हुआ आया है। इस लिए यदि वह लिपटा हुआ हो तो उसे छुड़ा देना चाहिए। कभी-कभी थैली में ही लिपटा हुआ भी बच्चा पैदा होता है, जिसके लिए पहले लिखा जा चुका है कि तुरन्त झिल्ली को फाड़कर बच्चा निकाल लेना उचित है। बाद यह देखे कि बालक हाँफता तो नहीं है। यदि हाँफता हो तो पहले उसके मुख में सावधानी से अँगुली डालकर लार निकाल डाले। बाद ठण्ढे पानी में अपना हाथ डुबाकर बच्चे की छाती पर बहुत धीरे से हथोसना चाहिए। थोड़ा हथोसने पर ही बालक रोने लगेगा। यदि इससे भी बालक न रोवे तो थोड़े से ठण्ढे जल का हल्का छींटा उसके मुख पर देना चाहिए अथवा बालक की पीठ पर हल्की थप-कियाँ लगाकर रुलाना चाहिए। यदि इतने पर भी बालक न रोवे

तो उसे गोद में चित लिटा ले और उसके दोनों हाथ पकड़ कर जरा ऊपर उठावे तथा उसके मुख में दो-चार फूँक लगावे। किन्तु फूँक लगाने वाली स्त्री का मुख बदबूदार न हो, नहीं तो बच्चे के बीमार हो जाने का भय रहेगा। बहुत सी स्त्रियाँ बच्चे को रुलाने के लिए ठण्ढे पानी में उसका सिर डुबा देती हैं, पर यह काम अच्छा नहीं है।

यदि बालक होकर नीला पड़ जाय; तो उसकी नाभि से तीन अँगुल छोड़कर नाल को काट दे। जब पैसे भर के अन्दाज खून गिर जाय, तब उसे फौरन बाँध दे; बहुत खून न गिरने पावे। ऐसा करने से मुख और आँख का नीलापन दूर हो जाता है। कितनी ही दाइयाँ बच्चे को रुलाने के लिए काली मिर्च चबाकर उसके मुख में फूँकती हैं, किन्तु इससे बच्चे की बहुत हानि होती है।

इस प्रकार पहले बच्चे को रुला कर तब उसका नाल काटना चाहिए। नाल काटने की रीति यह है:—नाल को नाभि से तीन तीन अँगुल छोड़कर बाँध दे। फिर उस बन्धन से आधा अँगुल छोड़कर एक बन्धन ओर लगा दे। बाद दोनों बन्धनों के बीच में तेज औजार से काट दे। नाल काटने के पहले बन्धन लगाना इस लिए बहुत जरूरी होता है कि जिसमें बच्चे के शरीर का खून न निकलने पावे। क्योंकि खून निकलने से बच्चा मर जाता है। नाल में दूसरा बन्धन इस लिए लगाया जाता है कि, शायद प्रसूता के पेट में दूसरा बालक हो। यदि वह बन्धन न लगाया जाय और

पेट में दूसरा बच्चा हो तो रक्त निकल जाने के कारण वह तुरन्त ही मर जाय। फिर तो प्रसूता का बचना भी कठिन हो जाता है। इसीसे दूसरा बन्धन लगा देना भी आवश्यक है। क्योंकि पेट में जितने बच्चे होते हैं सबका नाल एक ही होता है। यदि पेट में दूसरा बच्चा हो तो प्रसूता स्त्री से इसका हाल कभी न कहे। नहीं तो घबड़ा जाने के कारण प्रसूता की जान खतरे में पड़ जाने की सम्भावना रहती है।

नाल काटने से पहले एक बात पर ध्यान अवश्य देना उचित है। यह कि, बच्चा निर्जीव तो नहीं है। यदि वह निर्जीव यानी कमजोर अधिक हो, तो नाल काटने से पहले नाल को माँ की ओर से दुहकर बालक की नाभि तक ले आवे। ऐसा करने से खून बच्चे के शरीर में चला आता है। इतना करने के बाद नाल को काटना उचित है। कमजोर बालक के लिए कुछ दाइयाँ नाल के खून की चार-पांच बूँदें चटा देती हैं, किन्तु यह क्रिया हमें अच्छी नहीं जँचती—यद्यपि इससे भी बालक की कमजोरी दूर हो जाती है, क्योंकि माँ का खून बच्चे के लिए बहुत ही लाभदायक है, चाहे वह किसी भी रूप में उसके शरीर में प्रवेश कराया जाय। सबसे अच्छा तरीका वही ऊपर वाला नाल को दुहकर बच्चे के शरीर में रक्त पहुँचाना है। नाल काटने से पहले उसे शहद, घी और सेंधा नमक से मलकर शुद्ध करलेना बहुत ही उत्तम है। या सोने अथवा चाँदी के बुझे हुए जल से नाल को शुद्ध करके तब काटे।

नालोच्छेदन करने के बाद पहले से पीसकर रक्खी हुई एक माशे लकड़ी के कोयले की बुकनी में दो चावल कस्तूरी की बुकनी मिला कर उस पर लगा देनी चाहिए। ऐसा करने से बच्चे को मसान का रोग नहीं होता। पश्चात् घी, शहद, अनन्तमूल और ब्राह्मी के रस में थोड़ा सा चूर्ण मिलाकर चटा दे, यह बहुत ही गुणदायक है। इससे एक तो बालक का मल गिर जाता है और दूसरे तन्दुरुस्ती पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है, यदि ये चीजें न मिल सकें, तो बच्चे को शहद और घी चटाना चाहिए।

यदि बालक सतमासा या गर्भ पूरा होने के कुछ पहले ही पैदा हो जाय और वह निर्बल अधिक हो तो उसके लिए एक यत्न और करना चाहिये। वह यह कि धुनी हुई रुई कड़वे तेल में भिगोकर उसमें दो या चार दिन तक बच्चे को रक्खे। इससे बच्चे का उतना ही पोषण होता है, जितना कि माता के पेट में। ऐसा करने से सतमासे बच्चे भी बहुत से जी जाते हैं।

जिस छुरी या कैंची से नालोच्छेदन करना हो, उसे पहले खूब खौलते हुए पानी में डालकर गरम कर लेना चाहिए। बाद उसको ठण्ढा करके काम में लाना उचित है। ऐसा करने से लोहे के औजार में कोई विकार नहीं रह जाता और नाल जल्द सूख जाता है। नाल काटने के बाद बच्चे के शरीर में बेसन लगाकर उसे किंचित गरम जल से नहला देना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे के शरीर की मैल छूट जाती है। बालक के उत्पन्न होते ही

चतुर दाई को यह देख लेना चाहिए कि उसका अँग-प्रत्यङ्ग सब ठीक है या कोई अंग विकृत अथवा जुड़ा हुआ है। क्योंकि बहुत से बच्चो की हाथ पैर की अँगुलियाँ एक ही में जुड़ी हुई होती हैं। इसलिए यदि ऐसा हो तो फौरन तेज छुरे से उसे अलग कर देना चाहिए। ऐसा न करने से अँगुलियाँ जुड़ी हुई ही रह जाती हैं। इसी प्रकार यदि आँखों की पलकें बन्द हो यानी जुड़ी हुई हों तो उन्हें भी नश्तर देकर ठीक कर देना चाहिए। यदि गुदा का छिद्र बंद हो तो उसे भी खोल देना चाहिए। आजकल बहुत सी दाइयाँ काँच की चूड़ी को तोड़कर उसकी नोक से नाल चीर देती हैं। परन्तु यह बहुत ही वाहियात काम है। इससे बहुत भय और हानि है। यह काम तेज छुरे से ही होना उचित है। किन्तु इसके लिए बहुत ही चतुर दाई की आवश्यकता है। इसी प्रकार यदि कोई अँग बेडौल हो तो उसे तुरन्त ठीक कर देना चाहिए। जैसे, यदि नाक चिपटी हो तो उसे दुहकर ऊपर को उठा देनी चाहिए; यदि मस्तक टेढ़ा हो तो उसे दोनों हाथों से दाबकर सुडौल कर देना चाहिए। इस समय थोड़ी ही सावधानी और उपाय से बेडौल अंग सुडौल हो सकता है क्योंकि शरीर की हड्डियाँ बहुत ही कोमल रहती हैं। परन्तु बच्चे के शरीर में ज्यों-ज्यों हवा लगती है, त्यों-त्यों उसकी हड्डियाँ कड़ी होती जाती हैं।

कभी-कभी बच्चा उत्पन्न होने पर चुपचाप पड़ा रहता है, उसका कोई भी अँग नहीं हिलता-डोलता। ऐसी दशा में बच्चे

को होशियारी से उल्टा अर्थात् सिर नीचे और पैर ऊपर करके १०-१५ सिकंड तक रखना चाहिए और उसकी छाती को धीरे-धीरे दबाकर फेफड़ों में चैतन्यता लानी चाहिए। इस समय बच्चे के मुँह में अँगुली डालकर बलगम वगैरह निकाल लेना उचित है। कारण यह कि उल्टा करने से बच्चे के गले का बलगम मुख में आ जाता है।

नाल काटने के बाद बच्चे को करवट के बल लिटा देना चाहिए और उसे स्नान कराने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस समय बालक के समूचे शरीर में यदि शहद पोत दी जाय तो बहुत ही उत्तम है। शहद लगाने से बच्चा सदा के लिए रोगमुक्त हो जाता है। कुछ देर के बाद शहद को कोमल तथा साफ कपड़े से पोछकर बालक को नहला देना चाहिए। तीन अंगुल बचे हुए नाल को भी पानी में उबाले हुए मलमल के टुकड़े से लपेट देना चाहिए। बच्चे को नहलाते समय उसके नाल पर मैला पानी जरा भी न पड़ने दे। क्योंकि उसके भींजने से पक जाने या सड़ जाने का भय रहता है। नाल काटते समय यदि रुधिर को पीछे हटाकर १२ अनबिंधे मोती उसमें भर दिये जायँ और ऊपर से बाँधकर नाल को काटा जाय, पश्चात् एक मोती नित्य-प्रति बच्चे को खिलाया जाय तो आमरणपर्यन्त उसे चेचक रोग नहीं हो सकता।

बच्चे को स्नान कराने के लिए जो पानी गरम किया जाय, -समें यदि पीपल, गूलर या बटवृक्ष की छाल डाल दी जाय तो

बड़ा लाभ होता है। यदि उक्त वृक्षों की छाल समय पर न मिल सके तो तपाई हुई चाँदी या सोने को पानी में बुझाकर उसी जल से बच्चे को नहलाना उचित है। बच्चे को प्रति दिन कुनकुने पानी में जरा सा नमक मिलाकर स्नान कराने से बड़ा फायदा पहुँचता है।

बालक को पैदा होने के बाद दस्त होता है। इस दस्त का होना बहुत जरूरी है। यह दस्त जितना शीघ्र हो जाय उतना ही अच्छा। इसके होने से बच्चे का पेट साफ हो जाता है और भूख खूब ठिकाने से लगती है। यह मल गर्भ में बहुत दिनों का जुटने के कारण बड़ा हानिकारक होता है। यदि दस्त न हो तो शुद्ध किया हुआ दस बूँद रेंडी का तेल शहद में मिलाकर या योंही पिला देना उचित है। इससे अवश्य दस्त उतर आता है और बच्चे को आराम मिलता है। जब तक यह पहला दस्त नहीं हो जाता, तब तक बच्चा बड़ा ही बेचैन रहता है। इसके होने ही उसे फुरसत मिल जाती है। यदि यह मल बच्चे के पेट में दो-चार दिन रह जाता है अर्थात् दो-चार दिन तक बच्चे को दस्त नही होता, तो वह बालक रोगी हो जाता है और पेट की बीमारियाँ तो उसे बहुधा हुआ करती हैं। इसलिए इसमें जरा भी ढिलाई नहीं करनी चाहिए, बालक का पेट साफ करने के लिए उसको माता का दूध सबसे अधिक गुणकारी है। अतः पहले माता का दूध ही पिलाना चाहिए। यदि माता के स्तनों में दूध न उतरा हो तो रेंडी का तेल और मधु मिलाकर चटाना चाहिए।

यदि नाल से रुधिर निकलता हो तो उसे रेशम से बाँध देना चाहिए। नाल से रुधिर का निकलना बहुत ही हानिकर है। आठ नौ दिन में नाल अपने से सूखकर गिर जाता है। यदि वह आप ही न गिरे तो उसे भूलकर भी खींचना नहीं चाहिए। यदि बालक की खाल कहीं सिकुड़ी हुई हो और उसके पास कुछ मैल या छिला हुआ अथवा कटा हुआ दिखलायी पड़े तो उसको नरम कपड़े या स्पञ्ज से धो दिया करे तथा चिकनी खड़िया और चावल का आटा या मैदा मिलाकर उस पर लगा दिया करे।

कभी-कभी बच्चों का नाल पक भी जाता है। इस लिए चतुर दाई का कर्त्तव्य है कि वह ऐसे ढंग से सब काम करे कि उसके पकने की नौबत ही न आवे। यदि किसी कारणवश पक ही जाय तो उस पर सफेदा या कलई लगा देना चाहिए। यदि नाल सूज आया हो तो अफीम को तेल में घिसकर लगानेसे अच्छा हो जाता है। नाल काटने के बाद तुरन्त ही यदि कठ का तेल लगा दे तो उसके पकने या सूजने का भय नहीं रहता। कठ तेल इस प्रकार बनता है कि तेल और पानी को बराबर-बराबर लेकर उसमें कठ का चूर्ण डाल आग पर पकावे। जब सब पानी जल जाय और सिर्फ तेल रह जाय तब उसे उतार कर कपड़े से छान डाले और शीशी में रख दे यही कठ-तेल कहलाता है। यदि कठ तेल न हो तो तिल का तेल ही लगा देना चाहिए। इसके लगाने से भी पकने का भय बहुत कम रहता है।

अब हम इसी प्रकरण में यह भी लिख देना चाहते हैं कि बालक को कब-कब और कितना-कितना दूध पिलाना चाहिए। क्योंकि आजकल बहुधा स्त्रियाँ मूर्खता के कारण बच्चे को दूध अधिक पिला देती हैं जिससे वह रोगी हो जाता है। जहाँ बच्चे ने रोना शुरू किया, वहाँ दूध ही पिलाना उसके चुप कराने का उपाय समझा जाता है। स्त्रियाँ यह नहीं सोचतीं कि बच्चा केवल भूख लगने पर ही नहीं रोता, बल्कि किसी प्रकार का कष्ट होने पर भी वह रोने लगता है। इस लिए बालक की खूराक की मात्रा का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। नीचे लिखी खूराक उन बच्चों के लिए है, जो न तो अत्यन्त निर्बल हों और न बहुत सबल। इसलिए यदि बालक अधिक निर्बल हो तो नीचे की मात्रा से कम और अधिक हृष्ट-पुष्ट को तो अधिक मात्रा करना आवश्यक है। स्वस्थ बालक को कब-कब दूध देना चाहिये, इसकी सूची:—

१ सप्ताह के बच्चे को	१ महीने के बच्चे को	२ महीने के बच्चे को	५ महीनेके बच्चे को	७ महीनेके बच्चे को	९ महीनेके बच्चे को	१० महीने के बच्चे को
दिन के—	दिन के—	दिन के—	दिन के—	दिन के—	दिन के—	दिन के—
६ बजे	६ बजे	६॥ बजे	७ बजे	६॥ बजे	७ बजे	७ बजे
८ बजे	८॥ बजे	९ बजे	१० बजे	९ बजे	१० बजे	१० बजे
१० बजे	११ बजे	११॥ बजे	१ बजे	१० बजे	१ बजे	१ बजे
१२ बजे	१॥ बजे	२ बजे	४ बजे	२ बजे	४ बजे	४ बजे
२ बजे	३ बजे	४॥ बजे	रात के—	४॥ बजे	रात के—	रात के—
४ बजे	५॥ बजे	रात के—	७ बजे	रात के—	७ बजे	७ बजे
सन्ध्याके—	रात को—	७ बजे	१० बजे	७ बजे	१० बजे	
६ बजे	८ बजे	१० बजे	३ बजे	१० बजे		
रात के—	१०॥ बजे	३ बजे				
८ बजे	२॥ बजे					
१० बजे						
२ बजे						

ऊपर की तालिका से पाठिकायें यह जान सकती हैं कि बच्चे को कब-कब दूध पिलाना अच्छा है, किन्तु यह बात मालूम नहीं हो सकती कि एक बार कितना दूध पिलाना चाहिए। अतः यह बात जानने के लिए दूसरी सूची दी जाती है:—

बालक को कितना दूध देना चाहिए, इसकी सूची:—

अवस्था	कितनी बार पिलाना होगा	गाय का दूध	पानी	एक बार कितना	दिनभर में कितना
१ हफ्ता	१०	॥ औंस	१॥ औंस	२ औंस	२० औंस
१ मास	९	१॥ ,,	२॥ ,,	४ ,,	३६ ,,
२ मास	८	३ ,,	३ ,,	६ ,,	४८ ,,
३ मास	८	३॥ ,,	३ ,,	६ ,,	४८ ,,
४ मास	८	४ ,,	३ ,,	७ ,,	५६ ,,
५ मास	७	५ ,,	३ ,,	८ ,,	५६ ,,
६ मास	७	६ ,,	२ ,,	८ ,,	५६ ,,
७ मास	७	७ ,,	२ ,,	९ ,,	६३ ,,
८ मास	७	८ ,,	१ ,,	९ ,,	६३ ,,
९ मास	६	९ या १०	——	९ या १०	५४—६०
१० मास	६	१० या ११	——	१० या ११	६०—६६

यदि बालक की माता के स्तनों में दूध न हो या उसकी माँ मर जाय तो नीचे की तालिका के अनुसार मात्रा कर देनी चाहिए।

अवस्था	कितनी वार	दूध	क्रीम (मलाई)	वाली जल*	दिनभर में कितना	हरदफे कितना
		ड्राम	ड्राम	ड्राम	औंस	औंस
३ दिन	१०	१॥	१	६॥	१०	१
७ "	१०	३	१	८	१५	१॥
१४ "	१०	४	१	११	२०	२
२१ "	१०	६	२	१२	२५	२॥
२८ "	१०	८	२	१४	३०	३
३५ "	९	१०	३	१६	३२-५	३-५
४२ "	९	१३	३	१८	३८	४
४९ "	९	१६	३	२१	४४	५
५६ "	८	२०	४	२४	४८	६

बालक के लिए गाय के दूध से बढ़कर गुणकारी दूसरा दूध नहीं है। अगर है तो केवल माता का दूध; किन्तु माता का दूध तो अमृत तुल्य है अतः उसे दूध की श्रेणी में रखना ठीक नहीं। गाय का दूध हलका, पुष्ट, निरोग और फुर्तीला होता है, इस लिए बालक को सदा गाय का दूध ही पिलाना

* जौ को पीसकर या कूट कर थोड़े पानी में पकाये हुए पदार्थ को वाली जल कहते हैं। यह बड़ा ही पुष्ट, ठण्डा और हलका होता है। जिस बच्चे को प्यास अधिक लगे उसे यह जल पिलाना बड़ा ही लाभदायक है।

चित्र नम्बर ६
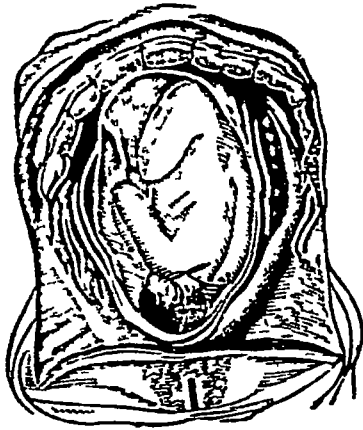
आठवाँ महीना ।

चाहिए। फिर भी खालिस दूध पिलाना ठीक नहीं। इसी से ऊपर की तालिकाओं में पानी भी दिया गया है। कारण यह कि खालिस दूध बच्चा नहीं पचा सकता। दूध में ऊपर के अनुसार पानी मिलाकर अच्छी तरह से गरम करके उसमें थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाना उचित है। बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाय त्यों-त्यों पानी की मात्रा कम करते जाना चाहिए। जब बच्चा नौ महीने का हो जाय, तब उसे जल-रहित शुद्ध दूध पिलाना उचित है। क्योंकि नौ मास के बालक में शुद्ध दूध पचाने की शक्ति आ जाती है।

बालकों की चेचक

यदि बालक को आजन्म के लिए इस रोग से बचाना हो तो माता-पिता का कर्त्तव्य है कि रजोदर्शन से सोलहवें दिन गर्भाधान करें। सोलहवीं रात में गर्भाधान होने से जो बालक उत्पन्न होता है, उसे प्रायः चेचक की बीमारी नहीं होती। कारण यह कि उस दिन का रज बिलकुल शुद्ध होता है और शीतला रोग माता के रज-विकार के कारण ही बालकों को हुआ करता है। माता के उदर में बालक जिस रुधिर से पलता है, उसी के विकार-से शीतला रोग होता है।

यह रोग छुआछूत से भी हो जाता है। यदि घर में एक बच्चे

को यह रोग हो जाय तो घरवालों का कर्त्तव्य है कि वे घर के और बच्चों को चेचक-रोगी के पास हर्गिज न जाने दें और सयानी स्त्रियाँ ही स्वच्छता के साथ रोगी की सेवा किया करें। इसे रोकने के लिए सबसे अच्छा और सरल उपाय तो टीका लगवाना है। टीका लग जाने पर शीतला निकलने की बहुत कुछ आशंका जाती रहती है। ऐसी दशा में यदि यह रोग होता भी है तो अधिक जोरदार नहीं होता।

शीतला रोग साधारणतया दो प्रकार का होता है। यहाँ पर भेदोपभेद लिखने की आवश्यकता नहीं है। अतः उस उलझन में न पड़कर रोग का यत्न बतलाना ही विशेष प्रयोजनीय है।

कचनार वृक्ष की छाल के क्वाथ में एक रत्ती सोनामक्खी भस्म बुरककर बालक को पिलाने से भीतर बढ़ी हुई शीतला शीघ्र बाहर निकल आती है। तुलसी की पत्तियाँ खिलाने से भी शीतला बाहर निकल आती है। तुलसी की पत्तियों की धूप भी शीतला रोगी को लाभ पहुँचाती है।

चेचक की बीमारी में उड़द की दाल और मीठा नहीं खिलाना चाहिए। माता को भी इन चीजों से बचकर ठढी चीजों का सेवन करना उचित है। जब चेचक के दाने बालक के शरीर पर दिखलायी पड़ने लग जायँ, तब माता को चार-चार तोला गोला स्वयं खाना चाहिये और यदि बालक दो वर्ष का हो तो दो तोला गोला उसे भी खिलाना लाभदायक है। दो वर्ष के ऊपर के बालक को

जितने वर्ष की अवस्था हो उतना तोला खिलाना चाहिए। इसके सेवन से चेचक के दाने अधिकता से नहीं निकलते।

मोती अथवा मोती के सीप, कछुए की खोपड़ी तथा मूँगा इन चीजों को जल से पीसकर बालक को पिलाने से चेचक से होने वाली पीड़ा शान्त हो जाती है। उक्त वस्तुओं को लौंग के जल में घिसकर पिलाने से छोटी शीतला शान्त हो जाती है। पीछे कही गयी नाल में भरी हुई मोती का सेवन दस दिन तक करा देने से तो बालक को चेचक का भय नहीं रह जाता।

इस बीमारी में बालक को बहुत स्वच्छ और हवादार स्थान में रखना चाहिए। कुछ लोगों की राय है कि अँधेरे मकान में रखना चाहिए, जिसमें शीतला के रोगी पर किसी की परछाहीं न पड़ने पावे; क्योंकि परछाहीं पड़ने से बालक के मुख पर दाग पड़ जाते हैं। पर वास्तव में यह बात ठीक नहीं है। दाग पड़ने का कारण छाया नहीं है, बल्कि घाव का देर में अच्छा होना है। जब खाज चलने पर बालक उसे खुजला देता है अथवा और किसी कारण से घाव देर में अच्छा होता है, तब वहाँ दाग पड़ जाता है। इसलिए दाग न पड़ने देने के लिए बालक के हाथों में कपड़े की थैली लगा देना आवश्यक है। यद्यपि इससे कोई विशेष लाभ तो नहीं होता, क्योंकि हाथ में थैली लगी रहने पर बालक दरेर कर खुजलाता है और घाव कर ही देता है, तथापि इतना फायदा तो अवश्य ही होता है कि बालक आसानी से अँग को

खुजला नहीं सकता और जहाँ खुजलाता है वहाँ विषैला नाखून नहीं लग सकता।

खुजली का निवारण करने के लिए कबूतर के पंख से मक्खन या मलाई खुजली के स्थान पर लगा देना चाहिए। अथवा चूने के पानी में नारियल का तेल फेटकर लगा देना चाहिए। इसके लगाने से दाग नहीं पड़ता और रोगी बालक को आराम मिलता है।

जब शीतला के दाने फूट जायँ, तब सिर्सा, पीपल, लिसोरा और गूलर की छाल को जलाकर उसकी पिसी हुई राख में घी मिलाकर फलोलों पर लगाना चाहिए। इससे दाने बहुत जल्द अच्छे होजाते हैं।

प्रसूता के लिए उपचार

बालक उत्पन्न होने के बाद स्त्री के पेट से एक मांस की सी थैली निकलती है जिसको विभिन्न प्रान्तों में 'आँवल' 'आँनार' 'गेड़ी' आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। जैसे गाय-भैंस के बच्चा पैदा होने के बाद जेड़ी गिरती है उसी प्रकार स्त्री के भी। इसका न निकलना बड़ा ही हानिकारक है। जब तक यह न गिरे, तब तक स्त्री के पेट पर से हाथ नहीं हटाना चाहिए। यदि यह अपने से न गिरे तो खींचकर कभी भी निकालने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि खींचकर निकालने से गर्भाशय को बड़ी हानि पहुँचती है। प्रसव होने के आधा घण्टा बाद यह थैली अपने-आप ही बाहर निकल आती है। यदि प्रसव के बाद एक घण्टा बीत जाय और वह थैली बाहर न निकले तो निकालने का यत्न करना आवश्यक है।

दाई को प्रसूता के पेट पर हाथ फेरते रहना चाहिए। ऐसा करने से पेट में पीड़ा होने लगती है और वह थैली बाहर निकल आती है। ऐसा करने पर भी यदि वह न गिरे तो नीचे लिखे आयुर्वेदशास्त्र के यत्नों को करना चाहिए।

१—भोजपत्र और गुग्गल को कूटकर प्रसूता की कमर में उसका धुआँ देना चाहिए।

२—लाँगली की जड़ को पानी में पीसकर प्रसूता के हाथ-पैर

में लेप करने से वह थैली शीघ्र गिर पड़ती है।

यदि इस तरह भी वह बाहर न निकले तो खुद दाई को चाहिए कि वह अपने हाथ में नारियल का तेल पोत कर खूब सावधानी से उसे इकट्ठा करके निकाले और एक हाथ से प्रसूता के पेट को दबाये रहे। यदि पेट दबाया नहीं जायगा तो खून बहुत निकलेगा और प्रसूता बिलकुल कमजोर हो जायगी। इस लिए इस बात की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। इसका थोड़ा अंश भी पेट में रह जाने से प्रसूता का स्वास्थ्य आजन्म के लिए नष्ट हो जाता है, उसे विषैला ज्वर आने लगता है।

जब यह बाहर निकल आवे तब एक दुपट्टा चौपर्त कर पेड़ू से कलेजे तक कस कर लपेट देना चाहिए। इससे खून का गिरना बन्द हो जाता है, प्रसूता का पेट नहीं डोलता, गर्भाशय डिगने नहीं पाता तथा स्त्री को आराम मिलता है। इस कपड़े को दूसरे तीसरे दिन खोलकर बाँधते रहना चाहिए। ऐसा करने से नसें खिंचने नहीं पातीं।

बहुत सी दाइयाँ बच्चा पैदा होने के बाद प्रसूता को बिठा देती हैं। उनका कहना है कि इससे खून बाहर निकल जाता है। किन्तु ऐसा कभी न करना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार खून निकालने से प्रसूता निर्जीव हो जाती है।

प्रसूता की जठराग्नि कमजोर रहती है। इस लिए उसके लिए दूध सबसे अच्छा भोजन है। दुःख की बात है कि हमारे देश में

अनभिज्ञता के कारण प्रसूता को गरिष्ट चीजें अधिक खिलायी जाती हैं, किन्तु उसे ऐसा भोजन देना चाहिए जो हल्का हो और साथ ही पौष्टिक। यदि सोंठ को पीस-छान कर उसकी एक फँकी लगाकर ऊपर से प्रसूता दूध पिये तो उसे बहुत ही लाभ पहुँचे। इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि देर में पचनेवाला भोजन प्रसूता के लिए बहुत ही हानिकारक है। उसके खान-पान में विशेष सावधानी रखने की जरूरत होती है। कारण यह कि बच्चा पैदा होने के बाद प्रसूता अत्यन्त निर्बल हो जाती है। उसके शरीर के रक्त में रोगों के कीटाणुओं का सामना करने की शक्ति नहीं रहती· इस लिए वह सहज ही में रोगाक्रान्त हो जाती है। ज्यों-ज्यों प्रसूता की पाचनशक्ति बढ़ती जाय, त्यों-त्यों अधिक पुष्टिकारक भोजन देना तो ठीक है; पर शुरू में ही गरिष्ट भोजन देना कदापि ठीक नहीं।

प्रसव होने के दो-तीन घण्टे बाद प्रसूता को कुछ खिलाकर सुला देना उचित है। इस समय किसी प्रकारका हल्ला-गुल्ला करना प्रसूता के लिए दुःखदायी होता है। हमारे यहाँ लड़का पैदा होने पर बन्दूकों की आवाजें की जाती हैं, स्त्रियाँ गाना-बजाना करती हैं; किन्तु उस समय यह सब करना अच्छा नहीं इन कामों से प्रसूता की बेचैनी बढ़ जाती है। इस समय ऐसी शान्ति रखनी चाहिए, जिससे प्रसूता को फौरन नींद आ जाय। जब वह सोकर उठे, तब उसे पेशाब कराना चाहिए, किन्तु उसे

उठाकर पेशाव न करावे, लेटे-ही-लेटे, क्योंकि हिलने-डोलने से प्रसूता को बड़ा ही कष्ट होता है। उठने वैठने या हिलने-डोलने से रक्त-स्राव होने लगता है। पारसियों के घरों की स्त्रियाँ प्रसव होने के चालिस दिन बाद बाहर निकलती हैं। इतना नहीं तो कम-से-कम १५-२० दिन तक तो अवश्य ही नियम का पालन करना प्रत्येक प्रसूता का कर्त्तव्य होना चाहिए। इस समय गर्भाशय सिकुड़ कर इतना छोटा नहीं हो गया रहता कि वह उदर-गह्वर में जा सके। वह कहीं १५-१६ दिन में उदर गह्वर में जाने के योग्य होता है। इस लिए इतने दिनों तक विशेष सावधानी की जरूरत रहती है। यही कारण है कि लेटे-ही-लेटे पेशाब करने का आदेश किया गया है।

यदि मूत्र न उतरे तो गरम पानी में साफ कपड़ा भिगोकर उसे निचोड़ डाले और उसे पेड़ू पर रक्खे। थोड़ी देर तक ऐसा करने से पेशाव हो जायगा। किन्तु यदि इससे भी पेशाव न हो तो किसी अच्छे वैद्य से उपाय पूछना चाहिए। क्योंकि इस समय मूत्र-त्याग करना प्रसूता के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस समय पेशाव न उतरने से रोग उत्पन्न हो जाता है। प्रसूता को मल-त्याग भी कराना चाहिए। यदि मल न गिरे तो रेंडी के तेल में या दूध में सनाय या और कोई हल्की विरेचन की चीज औटाकर देना चाहिए।

सौर के घर में राई, सफेद सरसो, नीम के पत्ते या इन्द्रवंद की धूनी देनी चाहिए; किन्तु इतना धुआँ न करना चाहिए कि बच्चे या

प्रसूता की आँखें दुखने लगें। प्रसूता तथा उसके व्यवहार के कपड़ों में भी यह धुआँ देना आवश्यक है। बहुधा स्त्रियाँ प्रसूता की चारपाई के नीचे धधकती हुई आग रख देती हैं—चाहे गर्मी हो या बरसात। इससे प्रसूता को तो कम, पर नाजुक बच्चे को बड़ा कष्ट होता है। इसलिए ऐसा कभी न करना चाहिए।

कहीं-कहीं बच्चा पैदा होने के पाँच छः दिन बाद ही स्नान करा दिया जाता है। यद्यपि स्वास्थ्य के लिए स्नान बहुत ही लाभदायक काम है, तथापि प्रसूता के लिए दस-बारह दिन से पहले स्नान कराना लाभदायक है, यह नहीं कहा जा सकता। इतने शीघ्र स्नान कराने से प्रसूता को ज्वर होने तथा सर्दी लगने की सम्भावना रहती है—जो कि इस समय के लिए घातक है। यदि स्वच्छता रखना हो तो और ढङ्ग से रक्खे, स्नान न करावे।

चालीस दिन तक प्रसूता के शरीर में प्रति दिन तेल-मर्दन करना चाहिए। यदि लाक्ष्यादि तेल मला जाय तो और भी उत्तम हो। क्योंकि इससे वायु नहीं बढ़ पाती और शरीर में बल खूब बढ़ता है। दस दिन बीत जाने पर तेल मल कर सबेरे गरम जल से प्रसूता को स्नान करा देना चाहिए। इससे किसी तरह की हानि नहीं होती, पर लाभ होता है।

प्रसूता को दस दिन तक बत्तीसा काढ़ा डालकर औटाया हुआ पानी पीना चाहिए। ये बत्तीसों चीजें पंसारियों के यहाँ मिलती हैं—जो कि बहुत ही गुणकारी हैं। उन बत्तीस चीजों में से यदि

इन चीजों का ही पानी बनाकर दिया जाय तब भी कोई हर्ज नहीं—१-अजवायन दो तोला, २—सोंठ एक तोला, ३—लौंग तीन माशा, ४—पीपल ३ माशा, ५—पीपलामूल तीन माशा, ६—जावित्री डेढ़ माशा, ७—जायफल डेढ़ माशा, ८—कमरकस छः माशा, ९—लोध छः माशा, १०—हल्दी छः माशा, ११—अम्मा हल्दी छः माशा, १२—सुपारी के फूल छः माशा, १३—असगन्ध छः माशा, १४—मेदा लकड़ी छः माशा, १५—कत्था तीन माशा, १६—माजूफल तीन माशा १७—केशर डेढ़ माशा, १८—चिकनी सुपारी एक, १९—सनाय डेढ़ माशा, २०—मँजीठ तीन माशा, २१—झाड़ी बेर की जड़ एक तोला, इन सब को जौकुट करके एक पोटली में बाँध दे। मिट्टी के बड़े बर्त्तन में १५-२० सेर पानी भर कर आग पर चढ़ा दे और उसमें उक्त पोटली डाल कर पकावे, बाद यही पानी प्रसूता को पिलावे। यदि ये चीजें भी न मिलें या मौके पर उपस्थित न हों तो पीपल, पीपलामूल, गजपीपल, मोचरस, चीता, सोंठ और गुड़ इन्हीं चीजों को पानी में औटाकर पीना चाहिए। ये चीजें भी वैसी ही गुण-कारी हैं। अथवा यदि दशमूल का काढ़ा पान करे तो और भी अच्छा हो। यह पूर्व प्रसूता तक के उत्पन्न हुए रोगों को नष्ट कर देता है। दशमूल के काढ़े में ये चीजें हैं:—१—शालपर्णी, २—पृष्ठपर्णी, ३—दोनों कटेरी, ४—गोखरू, ५—बेल की गिरी, ६—अरणी, ७—अरलू, ८—पाढ़, ९—खम्भारी (कुमेर), १०—

पीपल। दशमूल में इन दसों चीजों की समान मात्रा है। यदि पहले से ही इनका अर्क उतारा हुआ हो तो और भी अच्छा है।

बहुत जगह की यह प्रथा है कि प्रसूता को पानी नहीं दिया जाता। पर वास्तव में ऐसा करना ठीक नहीं। प्यास लगना ही पानी की इच्छा सूचित करता है। इस लिए इस स्वाभाविक माँग को पूर्ण न करना हानि के सिवा लाभ नहीं पहुँचा सकता। यदि प्रसूता को प्यास लगे तो दूध देना चाहिए; किन्तु यदि उससे उसकी तृप्ति न हो तो थोड़ा सा पानी दे देने में कोई हानि नहीं। हाँ, बालक पैदा होने के २८-३० घण्टे के भीतर अवश्य ही पानी नहीं देना चाहिए।

दाइयों की असावधानी के कारण प्रसूता के प्रसवद्वार से स्वाभाविकता से अधिक खून गिरने लगता है। ऐसी दशा में नीचे लिखी दवा बनाकर खिलानी चाहिए—

दोनों सुपारी, भाँविरी गोंद, कटीरा, गोंद बबूल, पठानी लोध कमरकस और गुलधावा इन चीजों को आठ-आठ तोला, माँजूफल समुद्रसोख, कायफल, सालम मिश्री, हँसराज, शाकुल और सफेद मुसली ये सब चार-चार तोला, वंसलोचन एक तोला, छोटी इलायची एक तोला, बादाम पावभर, गरी आध पाव, छुहारा और दाख आध-आध पाव, घी डेढ़ सेर आटा डेढ़ सेर और देशी शक्कर दो सेर। गोंद को घी में तल कर फुला लेना चाहिए। इन सब की पंजीरी बना कर उसमें सफेद मुसली और

स्याह मुसली एक सेर, दक्खिनी सुपारी, सिरयाली के बीज, गाजर के बीज, बीजबन्द, मँजीठ, कौंच के बीज, धाय के फूल, पलास की गोंद, इन्द्र जौ, तेजबल, पीपलामूल, माई, समुद्रसोख, वाय-विडंग, देशी आजवायन, तालमखाना, सोंठ, गोखरू, मोंजूफल, दालचीनी, मोचरस, कमरकस, बबूल की कली, बड़ी इलायची, असगन्ध सब एक एक तोला और संगजराहत तीन तोला इन सबको कूट-कपड़छान करके उसमें डाल दे। बाद यही पंजीरी बलाबल के अनुसार खिलावे। इससे शीघ्र रक्त स्राव बन्द हो जाता है।

जब तक स्त्री बच्चा होने बाद पुनः पूर्ववत् रजस्वला होकर शुद्ध नहीं हो जाती, तब तक उसे प्रसूता ही कहा जाता है। प्रसव के बाद प्रायः महीने डेढ़ महीने में स्त्रियाँ ऋतुमती होती हैं। बहुत से लोग सौर में बारह दिन तक रहने को ही प्रसूता मानते हैं; किन्तु यह उनकी भूल है। आयुर्वेद में लिखा है:—

प्रसूतासार्धमासान्तेदृष्टेवापुनरार्त्तवे।

अर्थात्—प्रसव के दिन से पैंतालिस दिन पर्यन्त अथवा पुन रजस्वला होने तक स्त्री की 'प्रसूत' संज्ञा है।

इस लिए डेढ़ महीने तक अर्थात् जब तक किसी शास्त्रकारों के कथनानुसार प्रसूता रहे, उसकी देख-रेख बड़ी ही सावधानी से करनी चाहिए। सूतिका-गृह को शुद्ध और सुगन्धित रखना चाहिए तथा प्रसूता के खान-पान की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए।

पाठिकायें पूछ सकती हैं कि सौर घर को सुगन्धित किस प्रकार रक्खा जाय ? क्या इत्र इत्यादि से ? नहीं, इच्छा हो तो इत्र से भी सुगन्धित रक्खे नहीं तो केवल सुगन्धित चीजों की धूनी ही कर दिया करे। इन चीजों की धूनी कर देने से घर सुगन्धित हो सकता है.—कपूर कचरी पावभर, चन्दन का चूर्ण पावभर, नागरमोथा आधपाव, अगर तगर, लाल चन्दन, गिलोय ढाई-ढाई तोला, गुग्गुल पाँच तोला, मँजीठ छः माशा, देवदारु एक तोला, मखाना दो तोला, दालचीनी एक तोला, लौंग एक तोला, और बड़ी इला-यची एक तोला इन चीजों को कूट कर गाय का घी, देशी खाँड़ और शहद मिलाकर रख दे और उसमें से थोड़ा-आग में डालकर धुआँ करके सूतिका-गृह को सुगन्धित कर दिया करे।

हमारे यहाँ सूतिका-घर में बहुधा हर समय भीड़ सी लगी रहती है; स्त्रियां बारी-बारी से प्रसूता के पास बैठकर व्यर्थ की बातें किया करती हैं। इन कामों से बड़ी ही हानि होती है। एक तो अधिक आदमियों के रहने से सूतिका-गृह की वायु दूषित हो जाती है, जिससे नाजुक बच्चे की तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है, दूसरे व्यर्थ की बातें सुनने से प्रसूता शान्तिलाभ नहीं कर सकती, जिससे बहुत सी लक्षित तथा अलक्षित बुराइयाँ पैदा होती हैं। इस लिए सूतिका-घर में अधिक स्त्रियों को फालतू कभी न रहने देना चाहिए और न तो किसी को व्यर्थ की गप्पें मारने के लिए ही स्वतन्त्रता दे रखनी चाहिए। क्योंकि ये दोनों ही विशेष हानिकारक हैं। इस

समय प्रसूता का शान्त और सात्विक भाव रखना बहुत ही आव-श्यक है। इससे बच्चे पर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ता है। कोई यह न समझे कि बच्चे इस वक्त कुछ सीखते ही नहीं।

गृहस्थी में ब्रह्मचर्य

पीछे लिखी गयी अवस्था तक स्त्री पुरुष को ठीक-ठीक ब्रह्म-चर्य का पालन और विद्याध्ययन कर लेने के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये। किन्तु गृहस्थी में रहकर भी दोनों को गृहस्थ ब्रह्मचारी के रूप में रहना चाहिए। जो मनुष्य आनन्द की इच्छा से स्त्री-प्रसग न करके सन्तानोत्पत्ति के लिए गर्भाधान का समय आने पर ही अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, वह गृहस्थ-ब्रह्म-चारी कहलाता है। गर्भाधान का समय ऋतुकाल के बाद आता है—जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। अतः महीने भर में एक बार के सिवा स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिए।

जो मनुष्य गृहस्थी में रहकर भी अपनी इन्द्रियों के वश में नहीं रहता, अपने कर्त्तव्यों पर सदा-सर्वदा ध्यान रखता है, साहस के साथ अपना काम करता है, अपने मान-मर्यादा की रक्षा करता है, बुद्धि को सुन्दर विचारों में लगा रखता है, किसी का अहित नहीं करता, जीव मात्र पर दया-भाव रखता है, दया और

प्रेम को अपना भूषण बनाये रहता है, केवल सन्तान की कामना से शास्त्र-विहित रीति से स्त्री-समागम करता है, धर्म की ओर प्रवृत्ति रखता है, वही सच्चा और उत्तम गृह[illegible]चारी है। किन्तु जो मनुष्य इसके विपरीत आचर[illegible] को भोग की सामग्री बना लेता है, वह मनुष्य दुरा[illegible] गृहस्थ नहीं। स्त्री विलास की सामग्री नहीं है बल्कि वह पुरुष शरीर का आधा अंग है। इसीसे आचार्यों ने पत्नी को अर्द्धाङ्गिनी नाम से सम्बोधित किया है। विवाह मानवी सृष्टि चलाने के लिए धार्मिक कर्म है। इसका विधिवत् पालन करने वाला मनुष्य गृहस्थी का काम-काज करता हुआ भी ब्रह्मचारी ही है। महाराज मनु जी ने लिखा है—

ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन्।

अर्थात्—ऋतुकाल की वर्जित रात्रियों को छोड़कर स्त्री-प्रसङ्ग करने वाला पुरुष चाहे जिस आश्रम में रहे, ब्रह्मचारी ही है। तात्पर्य यह कि केवल महीने-महीने पर ही स्त्री प्रसङ्ग करना उचित है और इसके भीतर स्त्री-प्रसङ्ग करने वाले लोग न तो सच्चे गृहस्थ हैं और न वे कभी सुखी ही रह सकते हैं। आजकल हजार में नौ सौ निन्यानवे नवयुवक प्रति दिन किसी-न-किसी तरह वीर्य-नाश करते हैं। स्त्रियाँ भी इसका कोई विशेष ख्याल नहीं रखतीं। उनका धर्म है कि वे अपने पतियों को ऐसे अत्याचार से बचने के लिए सदा सावधानी करती रहें। यह भार स्त्रियों पर इस लिए दिया जा रहा है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में शान्ति-गुण अधिक

मात्रा में होता है। यहां पर एक बात का उल्लेख क... है कि एक बार के ... स्त्री-पुरुष की कितनी ... जाती है। वैद्यक-ग्रन्थ ... है कि एक बार में एक पसर और स्त्री ... र नष्ट हो जाता है। वीर्य और रज इससे कम ... में गिरे तो समझना चा... यह दुराचार और निर्बलता का कुफल है। अब सोचने ... है कि जो वीर्य और रज शरीर का राजा है, जिस पर ... स्थित है और जो बहुत ही कम मात्रा में तैयार होता है ... कि पीछे कहा जा चुका है, उसका इतनी अधिक मात्रा में ... से बाहर निकल जाना कितना हानिकारक है। बड़े आश्च... बात है कि हम अपना ही घर फूंक कर तमाशा ... जीवनरूपी वीर्य का नाश करने ... वास्तविक आनन्द है, सुख की ... है, उसे तो हम ... गये हैं और जिस कार्य के करने से हमारा भव हरण है... है, उस काम को हम बड़ी तत्परता ... साथ करते हैं और ... पूर्ण सुख का अनुभव करते हैं। वास्तविक आनन्द और सच्चा ... वीर्य की रक्षा में है, नकि उसका नाश करने में। इस लिए ह... कर्त्तव्य है कि हम गृहस्थी में रहकर सच्चे गृहस्थ बनें और अ...

सन्तोष-पालन समाप्त